॥ॐ॥

शंकर और स्पिनोजा के दर्शन में सत् का स्वरूप

[इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद
की
डी० फिल० उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध]

निर्देशक
डॉ० हरिशंकर उपाध्याय
रीडर
दर्शन–विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद, उ०प्र०

शोध–कर्त्ता
राजेश कुमार मिश्र
(शोध–छात्र) दर्शन–विभाग इलाहाबाद
विश्वविद्यालय इलाहाबाद
सप्रति
प्रवक्ता – दर्शन–विभाग
नेशनल पी०जी० कालेज बडहलगंज,
गोरखपुर

इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद
वर्ष : 2000-2001

प्रस्तावना

मानव एक विवेकशील प्राणी है एव उसकी विवेकशीलता ही, अन्य जीवो से उसकी पृथकता का कारण है। अपने इस चिन्तनशील स्वभाव के कारण ही वह ससार के विभिन्न वस्तुओं के स्वरूप को समझने का प्रयास करता है। मानव स्वभावत ससार की सारी चीजों पर अपनी क्षमता अनुसार विचार करता है। सामान्य कोटि का मनुष्य जिसका बुद्धि स्तर निम्न कोटि का होता है, वह अपनी परिस्थितियो के अनुसार आचरण करता हुआ जीवन यापन करता है। वह अपने चारों तरफ व्याप्त वस्तुओ के बारे मे सामान्यतया कुछ सोचता विचारता नही है। अपने सांसारिक दु:खों को झेलता है किन्तु इन सब के बारे मे कुछ सोचने–विचारने की क्षमता न होने के कारण वह मौन रूप से प्रकृति अथवा ईश्वर का विधान समझकर अथवा अपने कत्तव्यो का प्रतिफल समझकर इनका सहन करता है। इसके विपरीत कुछ व्यक्ति अपने पर्यावरण एव दु:खो का कारण ईश्वरीय व्यवस्था अथवा धर्म मे ढूढने का प्रयास करते है। फलत. रूढिवादी अथवा अन्धविश्वास अथवा सुव्यवस्थित सनातन धर्म पर यथास्थिति चिन्तन प्रारम्भ होता है। ऐसे मे धार्मिक विचारधाराओं का प्रस्फुटन होता है। इन धार्मिक विचारधाराओ का अनुशीलन करने वालो के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी प्रबुद्ध एवं चिन्तनशील

प्राणी होते है जो अपने वातावरण के प्रति एव अपने सासारिक जीवन के प्रति स्वतन्त्ररूप से चिन्तन करते है। इसी चिन्तन के परिणामस्वरूप दर्शनशास्त्रका जन्म होता है।

प्रबुद्ध एवं चिन्तनशील व्यक्ति अपने चतुर्दिक् परिवेश के प्रति जागरूक होकर उनके बारे में जहॉ उनके कारण, उनके विकास, उनकी रचना आदि के बारे मे एक वैज्ञानिक के रूप में सोचता है, वही दूसरी तरफ उन पर एक दार्शनिक के रूप मे भी चिन्तन होना स्वाभाविक है। दार्शनिको का चिन्तन भौतिक परिवेश के साथ–साथ इससे परे भी होता है। इनका भौतिकीय चिन्तन भी तत्वमीमासा के रूप मे परिलक्षित होता है। इसी के परिणाम स्वरूप भौतिक जगत् से व्यथित बुद्ध के द्वारा बौद्ध दर्शन का प्रवर्तन हुआ। यही जैन–दर्शन के भी उद्‌भव का कारण बना एव यही – दैहिक दैविक एव भौतिक – दु ख त्र य के निदान के रूप में साख्य दर्शन का कारण बना।[1] किम् बहुना यही सोच डेकार्ट के सन्देह से प्रारम्भ कर उसके एव स्पिनोजा आदि के बुद्धिवादी दर्शन एव अन्य दार्शनिक विचारधाराओं का आधार बना। इसी चिन्तन का परिणाम रहा कि वेदोपनिषद् की दार्शनिक विचारधारायें एवं उसी क्रम मे वेदान्त दर्शन एव

[1] दु:खत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदपघातक हेतौ – साख्यकारिका – 1

इसके अनेक प्रवर्तक शकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य आदि की विचारधाराओ का प्रस्फुटन हुआ।

प्रबुद्ध एव चिन्तनशील दार्शनिक स्वभावत अपने बारे मे एव जगत के बारे मे चिन्तन करता है। परिणाम स्वरूप यह जगत् क्या है? इसका स्वरूप क्या है? पारमार्थिक सत् क्या है? मानव का अन्तिम लक्ष्य क्या है? आदि प्रश्नो का उत्तर पाना ही उसको विचारमथन के लिए प्रेरित करता है। इस विचारमथन मे व्यस्त मानव को वास्तविक तल का ज्ञान कराने वाला ही दर्शनशास्त्र है।

दर्शनशास्त्र ज्ञान की वह अबाध सरिता है जिसका प्रवाह अतीत से होता आ रहा है। इस प्रवाह क्रम मे जगत्, ब्रह्म आदि के बारे मे अनेक विचारधाराओ का प्रस्फुटन हुआ। फलत पौर्व एव पाश्चात्य दार्शनिको ने अपने–अपने ढग से सत् आदि के बारे मे विचार व्यक्त किये है। इसी क्रम मे – शकर और स्पिनोजा के सत् के स्वरूप सम्बन्धी विचारधाराओ पर विचार करना शोध–कर्ता का अभीष्ट है। यद्यपि इस विषय मे अनेक विद्वानो के मत् प्राप्त है फिर भी शोधकर्ता अपने ढग से अद्यतन इनके सम्बन्ध मे

प्राप्त विचारधाराओं को समन्वित करते हुए अपने विद्वान निर्देशक के निर्देशन मे उसे अपने ढग से प्रस्तुत करने का सम्यक प्रयास करेगा।

एतदर्थ शोध–कर्ता अपने विद्वान निर्देशक के निर्देशन मे अपने शोध–विषय – ''शंकर और स्पिनोजा के दर्शन मे सत् का स्वरूप'' – को निम्न अध्यायो मे विभक्त करेगा। इन अध्यायो का सक्षेप मे विवरण निम्नवत् है –

1– शाङ्कर वेदान्त एवं स्पिनोजा की दार्शनिक परम्परा का उद्भव और विकास।

2– शाङ्कर वेदान्त में सत् का स्परूप।

3– स्पिनोजा के दर्शन में सत् का स्वरूप।

4– शंकर एव स्पिनोजा के परम सत् ब्रह्म एव द्रव्य की तुलनात्मक विवेचना।

5– शकर एव स्पिनोजा की बन्धन और मोक्ष सम्बन्धी विचारधारा की विवेचना।

6– उपसंहार

अब हम यथापेक्षित इन अध्यायो पर संक्षेपतः प्रकाश डालेगे।

अध्याय – 1

शाङ्कर वेदान्त एवं स्पिनोजा की दार्शनिक परम्परा का उद्भव और विकास : –

भारतीय दर्शन का अभ्युदय "आध्यात्मिक जिज्ञासा" के कारण माना गया है। हम क्या है ? जगत् क्या है ? आत्मा क्या है ? इस जगत् का आदि एव अन्त क्या है ? इत्यादि प्रश्न मानव मस्तिष्क मे प्राय उठते रहे है। इन प्रश्नो या जिज्ञासाओ को वेद काल से लेकर अद्यावधि मानव हल करने का अपने–अपने ढग से प्रयास करता चला आ रहा है। वेदों मे मुख्यतया प्रकृति, सूर्य, चन्द्रमा आदि जिज्ञासा के बिन्दु रहे एव इनको ही वरीयता दी जाती रही है। इसके बाद वेदान्त में यह जिज्ञासा आगे बढकर कुछ अन्य रूपो मे परिलक्षित हुई।

वस्तुत· वेदान्त से अभिप्राय उपनिषदों से है किन्तु बाद में उपनिषदो से विकसित विचारधाराओ का भी बोध वेदान्त से होने लगा है। वैदिक काल के बाद में उपनिषदो का विकास हुआ। वैदिक काल का साहित्य तीन रूपो मे मिलता है .–

1– वैदिक मन्त्र

2– ब्राह्मण – (ब्राह्मणो के अन्तिम भाग–आरण्यक है।)

3– उपनिषद्

इन तीनो के बारे मे विस्तृत रूप से आगे यथास्थान विचार किया जायेगा। जहॉ तक वेदान्त के आधार स्वरूप उपनिषदो की बात है, ये भारतीय दर्शन की नीव या मूल बिन्दु है। इन्ही से सारा भारतीय दर्शन जन्म पाया है। ज्ञान एव ब्रह्म का साक्षात्कार ही उपनिषदो मे चर्चा का मुख्य विचारणीय विषय रहा है। समस्त उपनिषदो में इनके विषय मे अपने–अपने ढग से चर्चा हुई है। इन उपनिषदो मे कुछ ऐसे विषय है जिनमें आपस मे विरोध प्रतीत होता है। इन विरोधो को विभिन्न दार्शनिको ने अपने–अपने ढग से व्यवस्थित एव पारिभाषित करने का प्रयास किया। फलत ब्रह्म सूत्र एव ब्रह्मसूत्र की व्याख्या स्वरूप शाकर अद्वैतवाद, रामानुज के विशिष्टाद्वैतवाद आदि दार्शनिक विचारधाराओं का प्रस्फुटन हुआ।

शकर के अद्वैत वेदान्त के अनुसार एकमात्रब्रह्म ही पारमार्थिक सत् है। ब्रह्म के अतिरिक्त जगत् आदि माया या अज्ञान जनित है। आगे चलकर अध्याय एक मे हम शकर के पारमार्थिक सत् पर यथापेक्षित विचार करेगे।

जहाँ तक पाश्चात्य दार्शनिक स्पिनोजा के दर्शन के उद्भव की बात है हम देखते है कि यूनान के महान दार्शनिक अरस्तू ने दर्शनशास्त्रका प्रारम्भ – ''कौतूहल'' को ही बताया है। इसी से सम्बन्धित यह बात भी है कि किसी तथ्य को ऑख मूदकर नही मान लेना चाहिये क्योकि यह रूढिवाद का द्योतक है एव यह विवेकशील व्यक्ति के लिये अयथावत् है। इसी क्रम मे आगे चलकर आधुनिक पाश्चात्य दार्शनिक डेकार्ट ने ''सन्देह'' को वरीयता दी। उनके अनुसार सन्देह ही एक ऐसी कसौटी है जिससे हम किसी तथ्य का परीक्षण कर सकते है एव इस कसौटी पर खरा उतरने वाला तथ्य ही स्वीकार करने योग्य होता है। डेकार्ट ने इसी के आधार पर अपने दर्शन का सृजन किया। जहॉ तक स्पिनोजा की दार्शनिक विचारधारा के उद्भव का प्रश्न है, इसका उद्भव मूलत. डेकार्ट की दार्शनिक विचारधाराओ से हुआ है। यद्यपि सामन्यतया कोई भी विचारक या दार्शनिक केवल किसी एक से प्रभावित न होकर अपने समय तक की सम्पूर्ण सास्कृतिक एव दार्शनिक विरासत से प्रभावित होता है एवं यही बात स्पिनोजा के बारे मे भी है। वह मूलत डेकार्ट से प्रभावित हुआ एव उसकी (डेकार्ट की) ही दार्शनिक विचारधारा की कमियो को दूर करने में ही उसने अपने विचारो का शिलान्यास किया किन्तु उस पर प्रकारान्तर से ब्रूनो आदि का भी कम प्रभाव नही पडा है। स्पिनोजा, डेकार्ट के द्रव्य, गुण एवं पर्यायो

को स्वीकारता है एंव इनकी व्याख्या वह अपने अनुसार करता है। उसका द्रव्य ही पारमार्थिक सत् है। वही एकमात्रनित्य, सर्वगत्, अपरिच्छिन्न एव सर्वव्यापी सत् है। यह द्रव्य ही उसका ईश्वर है। इस द्रव्य के अनेक गुण है, जिनमे से मानव दो गुण चित् एव अचित् – को ही जानता है। इसी प्रकार पर्याय भी अनित्य एव सीमित तथा द्रव्य का ही स्वरूप है। उसके (द्रव्य के) अतिरिक्त वह (पर्याय) कुछ नही है। इन पर आगे यथापेक्षित विचार किया जायेगा।

अध्याय – 2

शाङ्कर वेदान्त में सत् का स्वरूप –

शकर के अनुसार ब्रह्म ही एकमात्रसत् है। ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य की सत्ता नहीं है। यही पारमार्थिक रूप से सत् है। इसकी सत्ता त्रिकाल बाधित नही है। इसके अतिरिक्त जगत् आदि असत् है। जगत् केवल व्यावहारिक रूप सें सत् है। ब्रह्म को पारमार्थिक सत् रूप बताते हुये जगत् आदि की दृष्टि से शकर ने सत्ता के निम्न तीन स्तर बताये –

1 पारमार्थिक

2 व्यावहारिक

3 प्रातिभासिक

स्वप्नावस्था के विषयो की सत्ता प्रातिभासिक होती है। जब तक हम सोते रहते है, स्वप्न जगत् की वस्तुए सत् प्रतीत होती है। जागने के तुरन्त बाद, उनकी सत्ता बाधित हो जाती है एव ये (स्वप्नावस्था की वस्तुए) असत् हो जाती है।

इसी प्रकार व्यावहारिक जगत् की वस्तुये भी केवल कुछ समय के लिए अज्ञानावस्था पर्यन्त ही सत् प्रतीत होती है। अज्ञान के समाप्त होते ही ज्ञान के अभ्युदय होने पर व्यावहारिक जगत् भी असत् प्रतीत होने लगता है। जगत् के भी असत् अनुभव होने पर एकमात्र ब्रह्म की ही पारमार्थिक सत्ता की प्रतीत होती है। इस प्रकार शकर का यह परम् सत् ब्रह्म सत्य, ज्ञान एव चेतन स्वरूप है। यह नित्य, सर्वगत, सर्वव्यापी एव अपरिच्छिन्न है। इसकी सत्ता त्रिकालाबाधित है। यह ही उपनिषदो, का "नेति–नेति" एव "तत्वमसि" एव "सत्य ज्ञान अनन्त ब्रह्म" है। इसके बारे मे अध्याय दो मे विस्तृत रूप से यथापेक्षित विचार किया जायेगा।

अध्याय – 3

स्पिनोजा के दर्शन में सत् का स्वरूप –

स्पिनोजा के अनुसार द्रव्य ही एक मात्रसत् है। यह द्रव्य ही ईश्वर है। द्रव्य या ईश्वर नित्य, सर्वगत् एवं सर्वव्यापी है। यह अपरिच्छिन्न है। यह अपरिमित है। इसकी सीमा का निर्धारण नही किया जा सकता। अस्तु यह असीम है। इस द्रव्य के अनन्त गुण है। इन अनन्त गुणों मे से मानव मात्रदो – चित् एव अचित् को ही जानता है। ये गुण द्रव्य या ईश्वर के ही है। इसके अतिरिक्त पर्याय भी ईश्वर के ही है। ये गुण एवं पर्याय ईश्वर के अतिरिक्त कुछं नही है। ये ईश्वर से निःसरित होकर उसी की छाया के रूप मे है। अध्याय–तीन मे इन पर यथापेक्षित विस्तृत रूप से विचार किया जायेगा।

अध्याय – 4

शंकर एवं स्पिनोजा के परम सत् ब्रह्म एवं द्रव्य की तुलनात्मक विवेचना–

शकर के ब्रह्म एव स्पिनोजा के द्रव्य के विषय में यथोक्न्त विवेचना से स्पष्ट है कि इनका ब्रह्म एव द्रव्य बहुत कुछ माने मे एक जैसा है। शकर के ब्रह्म के समान स्पिनोजा का द्रव्य या ईश्वर भी पारमार्थिक रूप से सत् है। दोनो के ब्रह्म एव द्रव्य एक समान नित्य, असीम, अपरिच्छिन्न, अपरिमित, सर्वव्यापी एव स्वयभू आदि है। इन समानताओ के बावजूद दोनो में कुछ अपनी भिन्नता भी है। शंकर को ब्रह्म के अतिरिक्त जगत् व्यावहारिक रूप मे स्वीकार होते हुए भी अन्तत उससे विरत होना ही उन्हे अभीष्ट है। इस दृष्टि से जगत् उनके लिए असत् एव अन्तत त्याज्य है। इसके विपरीत स्पिनोजा का वाह्य जगत् यद्यपि सीमित एव अनित्य है किन्तु वह ग्राह्य एव नैतिक एवं तार्किक रूप से स्वीकार्य है। वे यद्यपि सदाचारयुक्त जीवन व्यतीत करने की बात करते है किन्तु इसका अभिप्राय संन्यासी होने से नही है। इस विषय पर आगे हम सप्रमाण चर्चा करेगे। इस प्रकार हम देखते है कि पौर्व एव पाश्चात्य सस्कृति एव पारमार्थिक लक्ष्य की

दृष्टि से यद्यपि इन दोनो (शंकर और स्पिनोजो) के ब्रह्म एव द्रव्य मे यत्किचित भिन्नता है किन्तु बहुत कुछ माने मे यथोक्त इन दोनो मे समानता है, जिन पर हम अध्याय चार मे विस्तार से विचार करेगे।

अध्याय – 5

शंकर एवं स्पिनोजा की बन्धन एवं मोक्ष सम्बन्धी विचारधारा की विवेचना:–

शंकर एव स्पिनोजा के दर्शन मे क्रमश ब्रह्म एवं द्रव्य को ही परम सत् माना गया है। शकर के अनुसार आत्मा ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को अज्ञानता वश नही जान पाती एव अपने को अनित्य, परिच्छिन्न जीव के रूप मे मानने लगती है। आत्मा का अज्ञान से युक्त होना ही शंकर के अनुसार बन्धन है। आत्मा के बन्धन युक्त होने पर माया अनेक रूपात्मक जगत् की सृष्टि करती है। शकर के अनुसार साधन चतुष्टय आदि के द्वारा अज्ञान के नष्ट होने के पश्चात् आत्मा को अपने वास्तविक रूप का ज्ञान होता है एव इस स्थिति मे "अहं ब्रह्मास्मि" की अनुभूति ही मोक्ष है।

स्पिनोजा के अनुसार जब मनुष्य अपने सवेगो एव वासनाओ के वशीभूत होकर कर्म करता है तब वह बिल्कुल पराधीन होता है। वह अपने

का स्वामी नही रहता। वह भाग्य के पराधीन रहता है। वह अच्छे का अनुशीलन एवं बुरे का परित्याग नही कर पाता। स्पिनोजा के अनुसार यही मानव का बन्धन (Bondage) है।

स्पिनोजा के अनुसार वासनायुक्त आचरण के विपरीत तर्कयुक्त सयमित आचरण करना मानव के लिए श्रेयष्कर है। ऐसा आचरण करने वाला स्वतन्त्रहोकर भी नियमो एव कानून के अधीन ही आचरण करता है। ऐसे तर्क पूर्ण आचरण से ही आदर्श समाज की सरचना सभव है। तर्कपूर्ण संयमित आचरण करने वाला अपने आत्मानन्द के लिय प्रयत्नशील रहते हुए अन्य के भी आत्मानन्द का प्रयास करता है। स्पिनोजा की नियतिवादी विचारधारानुसार तर्कपूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए आत्मानन्द की अनुभूति ही स्वतन्त्रता या मुक्ति (Freedom) है/ यह स्वतन्त्रता ही मानव का परम श्रेयस या परम लक्ष्य है।

इस प्रकार यथोक्त शकर एव स्पिनोजा के बन्धन एव मोक्ष की विचारधाराओ में बहुत कुछ समानता है, जिस पर हम आगे विस्तृत रूप से विचार करेगे।

अध्याय – 6

उपसंहार –

उपर्युक्त प्रकारेण शकर एव स्पिनोजा के परम सत् एव इन पर तुलनात्मक रूप से विचार करने के साथ–साथ इनके बन्धन या मोक्ष या मुक्ति पर दृष्टिपात करने से सुस्पष्ट है कि इन दोनो की दार्शनिक विचारधारा अद्वैतवाद की समर्थक है। इनके विचारो में बहुत कुछ समानता है। दोनों का ब्रह्म एव द्रव्य बहुत कुछ माने मे एक समान है। जगत सबधी विचारो मे भी बहुत कुछ समानता है। बधन एव मोक्ष के बारे में कुछ भिन्नता अवश्य है किन्तु दोनो मे मूलत आत्मा का काम–वासना से युक्त होकर अपने वास्तविक रूप को भूलना ही बन्धन माना है तथा आत्मा द्वारा अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान होना ही मोक्ष है। यद्यपि इसके प्राप्त करने तथा प्राप्त होने पर (मोक्षावस्था मे) आचरण करने के बारे मे दोनों मे कुछ अन्तर अवश्य है किन्तु मूलत दोनों इस क्षेत्रमें भी समान विचार वाले है। इन बिन्दुओ पर विस्तृत रूप से आगे अध्याय – छ में विचार किया जायेगा।

इस प्रकार शकर एव स्पिनोजा की दार्शनिक विचारधाराओं पर विहगम दृष्टिपात करने से सुस्पष्ट है कि इनकी विचारधारा द्वैतवाद आदि दार्शनिक विराधो से रहित है। आधुनिक भौतिकवादी जगत मे अनेक प्रकार की विलासिता मे लिप्त मानव के लिए शकर एव स्पिनोजा अपने ढग के अद्वितीय दार्शनिक है। इनके द्वारा मानव का अतीव कल्याणकारी पथ प्रदर्शन हुआ है। यह शोध–प्रबन्ध शकर एव स्पिनोजा के दर्शन मे सत्ता के स्वरूप का तुलनात्मक अध्ययन करने का एक विनम्र प्रयास है। यद्यपि इसका यह कथमपि अभिप्राय नही है कि इसके पूर्व ऐसा कोई प्रयास नही हुआ है अथवा जो प्रयास हुआ है, वह अच्छी. कोटि का नही है। प्रत्युत इस शोध प्रबन्ध के माध्यम से शकर एव स्पिनोजा के पौर्व एव पाश्चात्य विचारो को एक समन्वित रूप में समझने का प्रयास है। अस्तु यह ग्रन्थ उक्त रूप मे विद्वानों को एक सुअवसर प्रदान कर सकेगा।

इसके अतिरिक्त यह शोध–प्रबन्ध शकराचार्य एवं स्पिनोजा के दर्शन मे अभिरूचि रखने वाले एव जिज्ञासु शोध कर्ताओं के लिए उपयोगी हो तभी शोध की सार्थकता होगी। इन दोनो विचारको के दर्शन मे अभिव्यक्त विचारधारायें शुष्क तर्कजाल एवं बौद्धिक अमूर्तीकरण नहीं, बल्कि मानव की सासारिक पीडा को शान्ति प्रदान करने वाली है। शंकर एवं

स्पिनोजा दोनो का लक्ष्य परम कल्याण की उस अवस्था को प्राप्त कराना है जहा समस्त ब्रह्माण्ड एक ही चैतन्य आत्म तत्व से आलोकित हो उठता है।[1]

इनके लिये आत्मानुभूति एवं आत्मानन्द ही परम लक्ष्य होता है। ऐसे मानव द्वारा ही आदर्श समाज की सकल्पना को मूर्त रूप दिया जा सकता है। "वसुधैव कुटुम्बकम्" का सदुपदेश देना एव मानव हृदय में इसका बीजारोपण करना – आदि लक्ष्यो की पूर्ति इसके द्वारा सहज रूप में सभव है।

शकर एव स्पिनोजा दोनो पौर्व एवं पाश्चात्य दार्शनिक है। इन दोनों दार्शनिको के विचारों की समालोचना पौर्व एवं पाश्चात्य दर्शन का जहा एक ओर समन्वित रूप देखने का सुअवसर प्रदान करेगी वही दूसरी ओर पौर्व एव पाश्चात्य सभ्यता एव सस्कृति से प्रभावित दार्शनिक विचारधारा के समन्वित रूप का अनुशीलन भी करायेगी। यह शोध प्रबन्ध समस्त सामाजिक प्रदूषणो का समापन एव मानव कल्याण का प्रत्यार्पण कर परम श्रेयस अथवा मोक्ष या मुक्ति (Freedom) की प्राप्ति का एक सुव्यवस्थित मार्ग प्रस्तुत करेगा एव इस मार्ग का अनुशीलन कर नियतिवादी विचारधारा

---

[1] विद्याविनय सम्पन्नो विद्वान विनीत च यो ब्राह्मण· तस्मिन् ब्राह्मणे गवि हस्तिनि शुनिच एव श्वपाके च पण्डिता समदर्शिन.।
– शांकर भाष्य – गीता – 5 – 18

के अनुसार सदाचार तथा तर्कपूर्ण आचरण करते हुए स्थित प्रज्ञ का जीवन व्यतीत करने वाला भौतिकवादी विभीषिका से बच सकेगा, नैतिकता पूर्ण आचरण कर सकेगा, आत्म ज्ञानी एव आत्मानन्द प्राप्त करने वाला बन सकेगा, कि बहुना वह ईसा मसीह एव महात्मा गॉधी बन सकेगा। इस शोध प्रबन्ध मे शोध कर्ता ने जो विचार प्रस्तुत किये है, वह उक्त लक्ष्य की प्राप्ति मे जितना अधिक सफल हो सकेगा, शोधकर्ता अपने परिश्रम को उतना ही सार्थक समझेगा।

शोधकर्ता की बहुत प्रारम्भ से ही ऐसी इच्छा रही है कि वह शकर एव स्पिनोजा की विचारधाराओ के बारे मे विस्तृत अध्ययन कर, उनकी समानता एव असमानता को दृष्टि मे रखते हुए कुछ उपयोगी विचार प्रस्तुत कर सके। इस इच्छा के फलस्वरूप यह शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करने की भावना उद्भूत हुई। शोधकर्ता की प्रारम्भ से ही शकर एव स्पिनोजा के दर्शन के प्रति बडा ही लगाव रहा है। यह इच्छा वंशानुक्रम एवं वातावरण के कारण और भी द्विगुणित हो गयी क्योकि मेरे पूज्य पिता डॉ0 गजेन्द्र नारायण मिश्र जो कि शंकर एवं अरविन्द के विचारों के एक परम सुविज्ञ एवं चिन्तक रहे है, द्वारा सदैव अद्वैतवादी विचारधारा का सदुपदेश मिलता रहा है। उनकी प्रेरणा मेरे इस कार्य को पूर्ण करने मे परम सहयोगी रही है। इसके अतिरिक्त शंकर दर्शन के बारे मे विश्वविख्यात एवं लब्ध प्रतिष्ठ

विद्वान स्वर्गीय पूज्यपाद प्रो0 शिव शंकर राय, भूतपूर्व विभागाध्यक्ष दर्शनशास्त्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद का उद्बोधन एव आशीर्वचन भी इस शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने में बडा सहयोगी रहा है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद के दर्शनशास्त्रके पूर्व विभागाध्यक्ष प्रो० देवकी नन्दन द्विवेदी का आशीर्वचन एव प्रेरणा तथा प्रो0 राम लाल सिह इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद का समय-समय पर प्राप्त उद्बोधन भी इस शोध प्रबन्ध को मूर्त रूप देने का प्रमुख कारण रहा है। जहॉ तक इस कार्य को सम्पन्न करने एव पूर्ण करने की बात है, इस दृष्टि से पूज्या माता श्रीमती शान्ती देवी एव अग्रज श्री जनार्दन प्रसाद मिश्र एवं श्री विमल कुमार मिश्र का आशीर्वाद एव आशीर्वचन एवं सदुपदेश भी परम सहयोगी रहा है। मेरे भविष्य के लिए अहर्निश चिन्तनशील अग्रज श्री इन्दु प्रकाश मिश्र के बारे में जितना कहा जाय वह कम ही है। यह कार्य अनेक बाधाओं के बावजूद सम्पन्न हो सका, यह उनकी सदाशयता, महानता एव अनुज के प्रति परम आत्मीयता का द्योतक रहा है। अन्य परिवार के लोगों एव आत्मीय जनों का सहयोग भी इस कार्य को मूर्त रूप देने मे बड़ा ही सहायक रहा है। मेरे भविष्य के बारे में अहर्निश आशीर्वाद देने वाले पूज्यपाद ताऊ प0 रमाकान्त मिश्र एव मेरे मार्ग दर्शक एव शुभेच्छु विद्वान डॉ0 शिवदत्त तिवारी, प्राचार्य नेशनल पी0जी0 कालेज बडहलगज, गोरखपुर तथा इस संस्था के सर्वस्व

प0 हरिशकर तिवारी, मत्री उ0प्र0 सरकार का आशीर्वचन एव सहयोग भी शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने मे मनोबल को बढाने वाला रहा है। जहॉ तक इस शोध प्रबन्ध को पल्लवित पुष्पित कर मूर्त रूप देने वाले विद्वान डॉ0 हरिशंकर उपाध्याय, दर्शन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद की बात है उनके बारे मे जितना कहा जाय, वह कम है। आज के भौतिकवादी युग मे इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पूर्व विद्वान प्रोफेसर्स की निर्लिप्त भाव से शिष्यो के मार्गदर्शन करने की परम्परा को सजोये हुए उन्होने जिस प्रकार मेरे बी0ए0 मे अध्ययन करते समय से अद्यावधि मेरा मार्ग दर्शन किया, वह उनकी विद्वता एव महानता का द्योतक है। उन्होने अपनी अनेक व्यस्तता के बावजूद जिस प्रकार मेरा मार्ग दर्शन किया, सदुपदेश दिया, उसी का प्रतिफल रहा कि यह शोध प्रबन्ध समय से विधिवत मूर्त रूप ले सका। यथोक्त इन सब के आशीर्वचन, सहयोग, सदुपदेश देने वालों के प्रति जितना ही आभार व्यक्त करूँ वह कम ही है। फिर भी औपचारिकता के रूप मे मै इन सब का आभारी हूँ कि इनके सहयोग से मेरा शोध प्रबन्ध ''शंकर और स्पिनोजा के दर्शन मे सत् का स्वरूप'' मूर्त रूप ले सका।

अन्त मे मै उन विद्वज्जनो का और भी आभारी होऊँगा जो इस शोध प्रबन्ध को शकर और स्पिनोजा के अद्वैतवादी पुनीत दार्शनिक विचारों के अनुशीलन के योग्य समझेगे, जो इसे विश्व बन्धुत्व एव विश्व कल्याण का

बीजारोपण करने वाला समझेगे, जो इसे सदाचार तर्क पूर्ण एव स्थित प्रज्ञ जैसा जीवन व्यतीत करके आत्मानन्द की प्राप्ति का साधन समझेगे।

शोधकर्त्ता
राजेश कुमार मिश्र
शोधछात्र– दर्शनविभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
एवं
प्रवक्ता
दर्शनविभाग
नेशनल पी०जी० कालेज बडहलगंज
गोरखपुर

।।ॐ।।

शंकर और स्पिनोजा के दर्शन में सत् का स्वरूप
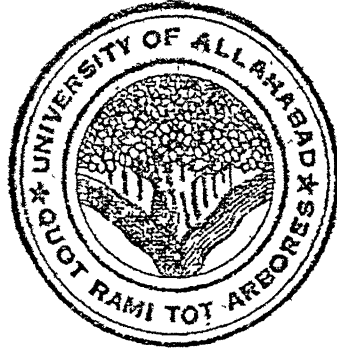
[इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद
की
डी० फिल० उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध]

निर्देशक
डॉ० हरिशंकर उपाध्याय
रीडर
दर्शन–विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद, उ०प्र०

शोध–कर्त्ता
राजेश कुमार मिश्र
(शोध–छात्र) दर्शन–विभाग इलाहाबाद
विश्वविद्यालय इलाहाबाद
संप्रति
प्रवक्ता – दर्शन–विभाग
नेशनल पी०जी० कालेज बड़हलगज,
गोरखपुर

इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद
वर्ष : 2000-2001

अनुक्रमणिका

प्रस्तावना

मानव एक विवेकशील प्राणी है एव उसकी विवेकशीलता ही, अन्य जीवो से उसकी पृथकता का कारण है। अपने इस चिन्तनशील स्वभाव के कारण ही वह ससार के विभिन्न वस्तुओ के स्वरूप को समझने का प्रयास करता है। मानव स्वभावत ससार की सारी चीजो पर अपनी क्षमता अनुसार विचार करता है। सामान्य कोटि का मनुष्य जिसका बुद्धि स्तर निम्न कोटि का होता है, वह अपनी परिस्थितियों के अनुसार आचरण करता हुआ जीवन यापन करता है। वह अपने चारो तरफ व्याप्त वस्तुओं के बारे मे सामान्यतया कुछ सोचता विचारता नही है। अपने सासारिक दु खो को झेलता है किन्तु इन सब के बारे मे कुछ सोचने–विचारने की क्षमता न होने के कारण वह मौन रूप से प्रकृति अथवा ईश्वर का विधान समझकर अथवा अपने कत्तव्यो का प्रतिफल समझकर इनका सहन करता है। इसके विपरीत कुछ व्यक्ति अपने पर्यावरण एव दु:खों का कारण ईश्वरीय व्यवस्था अथवा धर्म मे ढूढने का प्रयास करते है। फलत रूढिवादी अथवा अन्धविश्वास अथवा सुव्यवस्थित सनातन धर्म पर यथास्थिति चिन्तन प्रारम्भ होता है। ऐसे मे धार्मिक विचारधाराओं का प्रस्फुटन होता है। इन धार्मिक विचारधाराओ का अनुशीलन करने वालो के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी प्रबुद्ध एवं चिन्तनशील

प्राणी होते है जो अपने वातावरण के प्रति एव अपने सासारिक जीवन के प्रति स्वतन्त्ररूप से चिन्तन करते है। इसी चिन्तन के परिणामस्वरूप दर्शनशास्त्रका जन्म होता है।

प्रबुद्ध एव चिन्तनशील व्यक्ति अपने चतुर्दिक् परिवेश के प्रति जागरूक होकर उनके बारे मे जहॉ उनके कारण, उनके विकास, उनकी रचना आदि के बारे में एक वैज्ञानिक के रूप मे सोचता है, वही दूसरी तरफ उन पर एक दार्शनिक के रूप मे भी चिन्तन होना स्वाभाविक है। दार्शनिको का चिन्तन भौतिक परिवेश के साथ–साथ इससे परे भी होता है। इनका भौतिकीय चिन्तन भी तत्वमीमासा के रूप मे परिलक्षित होता है। इसी के परिणाम स्वरूप भौतिक जगत् से व्यथित बुद्ध के द्वारा बौद्ध दर्शन का प्रवर्तन हुआ। यही जैन–दर्शन के भी उद्भव का कारण बना एव यही – दैहिक दैविक एव भौतिक – दु ख त्र य के निदान के रूप मे सांख्य दर्शन का कारण बना।[1] किम् बहुना यही सोच डेकार्ट के सन्देह से प्रारम्भ कर उसके एव स्पिनोजा आदि के बुद्धिवादी दर्शन एव अन्य दार्शनिक विचारधाराओं का आधार बना। इसी चिन्तन का परिणाम रहा कि वेदोपनिषद् की दार्शनिक विचारधारायें एव उसी क्रम मे वेदान्त दर्शन एव

[1] दु खत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदपघातक हेतौ – साख्यकारिका – 1

इसके अनेक प्रवर्तक शकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य आदि की विचारधाराओ का प्रस्फुटन हुआ।

प्रबुद्ध एव चिन्तनशील दार्शनिक स्वभावत अपने बारे मे एव जगत के बारे मे चिन्तन करता है। परिणाम स्वरूप यह जगत् क्या है? इसका स्वरूप क्या है? पारमार्थिक सत् क्या है? मानव का अन्तिम लक्ष्य क्या है? आदि प्रश्नो का उत्तर पाना ही उसको विचारमथन के लिए प्रेरित करता है। इस विचारमथन मे व्यस्त मानव को वास्तविक तल का ज्ञान कराने वाला ही दर्शनशास्त्र है।

दर्शनशास्त्र ज्ञान की वह अबाध सरिता है जिसका प्रवाह अतीत से होता आ रहा है। इस प्रवाह क्रम मे जगत्, ब्रह्म आदि के बारे मे अनेक विचारधाराओ का प्रस्फुटन हुआ। फलत पौर्व एव पाश्चात्य दार्शनिको ने अपने–अपने ढग से सत् आदि के बारे मे विचार व्यक्त किये है। इसी क्रम मे – शकर और स्पिनोजा के सत् के स्वरूप सम्बन्धी विचारधाराओ पर विचार करना शोध–कर्ता का अभीष्ट है। यद्यपि इस विषय में अनेक विद्वानो के मत् प्राप्त है फिर भी शोधकर्ता अपने ढग से अद्यतन इनके सम्बन्ध में

प्राप्त विचारधाराओ को समन्वित करते हुए अपने विद्वान निर्देशक के निर्देशन मे उसे अपने ढग से प्रस्तुत करने का सम्यक प्रयास करेगा।

एतदर्थ शोध–कर्ता अपने विद्वान निर्देशक के निर्देशन मे अपने शोध–विषय – "शकर और स्पिनोजा के दर्शन मे सत् का स्वरूप" – को निम्न अध्यायो मे विभक्त करेगा। इन अध्यायों का सक्षेप में विवरण निम्नवत् है –

1– शाड्कर वेदान्त एव स्पिनोजा की दार्शनिक परम्परा का उद्भव और विकास।

2– शाड्कर वेदान्त मे सत् का स्परूप।

3– स्पिनोजा के दर्शन में सत् का स्वरूप।

4– शकर एव स्पिनोजा के परम सत् ब्रह्म एवं द्रव्य की तुलनात्मक विवेचना।

5– शकर एव स्पिनोजा की बन्धन और मोक्ष सम्बन्धी विचारधारा की विवेचना।

6– उपसहार

अब हम यथापेक्षित इन अध्यायो पर संक्षेपतः प्रकाश डालेगे।

अध्याय – 1

शाङ्कर वेदान्त एवं स्पिनोजा की दार्शनिक परम्परा का उद्भव और विकास : –

भारतीय दर्शन का अभ्युदय "आध्यात्मिक जिज्ञासा" के कारण माना गया है। हम क्या है ? जगत् क्या है ? आत्मा क्या है ? इस जगत् का आदि एव अन्त क्या है ? इत्यादि प्रश्न मानव मस्तिष्क मे प्रायः उठते रहे हैं। इन प्रश्नो या जिज्ञासाओ को वेद काल से लेकर अद्यावधि मानव हल करने का अपने–अपने ढग से प्रयास करता चला आ रहा है। वेदो में मुख्यतया प्रकृति, सूर्य, चन्द्रमा आदि जिज्ञासा के बिन्दु रहे एव इनको ही वरीयता दी जाती रही है। इसके बाद वेदान्त मे यह जिज्ञासा आगे बढकर कुछ अन्य रूपो मे परिलक्षित हुई।

वस्तुत वेदान्त से अभिप्राय उपनिषदों से है किन्तु बाद मे उपनिषदो से विकसित विचारधाराओ का भी बोध वेदान्त से होने लगा है। वैदिक काल के बाद में उपनिषदो का विकास हुआ। वैदिक काल का साहित्य तीन रूपो में मिलता है :–

1– वैदिक मन्त्र

2– ब्राह्मण – (ब्राह्मणो के अन्तिम भाग–आरण्यक हैं।)

3– उपनिषद्

इन तीनो के बारे मे विस्तृत रूप से आगे यथास्थान विचार किया जायेगा। जहॉ तक वेदान्त के आधार स्वरूप उपनिषदों की बात है, ये भारतीय दर्शन की नीव या मूल बिन्दु है। इन्हीं से सारा भारतीय दर्शन जन्म पाया है। ज्ञान एव ब्रह्म का साक्षात्कार ही उपनिषदो मे चर्चा का मुख्य विचारणीय विषय रहा है। समस्त उपनिषदो मे इनके विषय में अपने–अपने ढग से चर्चा हुई है। इन उपनिषदो मे कुछ ऐसे विषय है जिनमें आपस में विरोध प्रतीत होता है। इन विरोधो को विभिन्न दार्शनिको ने अपने–अपने ढंग से व्यवस्थित एव पारिभाषित करने का प्रयास किया। फलत ब्रह्म सूत्र एव ब्रह्मसूत्र की व्याख्या स्वरूप शाकर अद्वैतवाद, रामानुज के विशिष्टाद्वैतवाद आदि दार्शनिक विचारधाराओ का प्रस्फुटन हुआ।

शंकर के अद्वैत वेदान्त के अनुसार एकमात्रब्रह्म ही पारमार्थिक सत् है। ब्रह्म के अतिरिक्त जगत् आदि माया या अज्ञान जनित है। आगे चलकर अध्याय एक मे हम शकर के पारमार्थिक सत् पर यथापेक्षित विचार करेंगे।

जहाँ तक पाश्चात्य दार्शनिक स्पिनोजा के दर्शन के उद्भव की बात है हम देखते है कि यूनान के महान दार्शनिक अरस्तू ने दर्शनशास्त्रका प्रारम्भ – "कौतूहल" को ही बताया है। इसी से सम्बन्धित यह बात भी है कि किसी तथ्य को ऑख मूदकर नही मान लेना चाहिये क्योकि यह रूढिवाद का द्योतक है एव यह विवेकशील व्यक्ति के लिये अयथावत् है। इसी क्रम मे आगे चलकर आधुनिक पाश्चात्य दार्शनिक डेकार्ट ने "सन्देह" को वरीयता दी। उनके अनुसार सन्देह ही एक ऐसी कसौटी है जिससे हम किसी तथ्य का परीक्षण कर सकते है एव इस कसौटी पर खरा उतरने वाला तथ्य ही स्वीकार करने योग्य होता है। डेकार्ट ने इसी के आधार पर अपने दर्शन का सृजन किया। जहाँ तक स्पिनोजा की दार्शनिक विचारधारा के उद्भव का प्रश्न है, इसका उद्भव मूलत· डेकार्ट की दार्शनिक विचारधाराओं से हुआ है। यद्यपि सामन्यतया कोई भी विचारक या दार्शनिक केवल किसी एक से प्रभावित न होकर अपने समय तक की सम्पूर्ण सांस्कृतिक एव दार्शनिक विरासत से प्रभावित होता है एवं यही बात स्पिनोजा के बारे में भी है। वह मूलत डेकार्ट से प्रभावित हुआ एवं उसकी (डेकार्ट की) ही दार्शनिक विचारधारा की कमियो को दूर करने मे ही उसने अपने विचारों का शिलान्यास किया किन्तु उस पर प्रकारान्तर से ब्रूनो आदि का भी कम प्रभाव नहीं पडा है। स्पिनोजा, डेकार्ट के द्रव्य, गुण एव पर्यायों

को स्वीकारता है एव इनकी व्याख्या वह अपने अनुसार करता है। उसका द्रव्य ही पारमार्थिक सत् है। वही एकमात्रनित्य, सर्वगत्, अपरिच्छिन्न एवं सर्वव्यापी सत् है। यह द्रव्य ही उसका ईश्वर है। इस द्रव्य के अनेक गुण है, जिनमे से मानव दो गुण चित् एव अचित् – को ही जानता है। इसी प्रकार पर्याय भी अनित्य एव सीमित तथा द्रव्य का ही स्वरूप है। उसके (द्रव्य के) अतिरिक्त वह (पर्याय) कुछ नही है। इन पर आगे यथापेक्षित विचार किया जायेगा।

अध्याय – 2

शाङ्कर वेदान्त में सत् का स्वरूप –

शकर के अनुसार ब्रह्म ही एकमात्रसत् है। ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य की सत्ता नही है। यही पारमार्थिक रूप से सत् है। इसकी सत्ता त्रिकाल बाधित नही है। इसके अतिरिक्त जगत् आदि असत् है। जगत् केवल व्यावहारिक रूप सें सत् है। ब्रह्म को पारमार्थिक सत् रूप बताते हुये जगत् आदि की दृष्टि से शंकर ने सत्ता के निम्न तीन स्तर बताये –

1 पारमार्थिक

2 व्यावहारिक

3 प्रातिभासिक

स्वप्नावस्था के विषयो की सत्ता प्रातिभासिक होती है। जब तक हम सोते रहते है, स्वप्न जगत् की वस्तुए सत् प्रतीत होती है। जागने के तुरन्त बाद, उनकी सत्ता बाधित हो जाती है एवं ये (स्वप्नावस्था की वस्तुए) असत् हो जाती है।

इसी प्रकार व्यावहारिक जगत् की वस्तुये भी केवल कुछ समय के लिए अज्ञानावस्था पर्यन्त ही सत् प्रतीत होती है। अज्ञान के समाप्त होते ही ज्ञान के अभ्युदय होने पर व्यावहारिक जगत् भी असत् प्रतीत होने लगता है। जगत् के भी असत् अनुभव होने पर एकमात्र ब्रह्म की ही पारमार्थिक सत्ता की प्रतीत होती है। इस प्रकार शंकर का यह परम् सत् ब्रह्म सत्य, ज्ञान एव चेतन स्वरूप है। यह नित्य, सर्वगत, सर्वव्यापी एवं अपरिच्छिन्न है। इसकी सत्ता त्रिकालाबाधित है। यह ही उपनिषदो, का ''नेति–नेति'' एव ''तत्वमसि'' एव ''सत्यं ज्ञान अनन्त ब्रह्म'' है। इसके बारे में अध्याय दो में विस्तृत रूप से यथापेक्षित विचार किया जायेगा।

अध्याय – 3

स्पिनोजा के दर्शन में सत् का स्वरूप –

स्पिनोजा के अनुसार द्रव्य ही एक मात्रसत् है। यह द्रव्य ही ईश्वर है। द्रव्य या ईश्वर नित्य, सर्वगत् एव सर्वव्यापी है। यह अपरिच्छिन्न है। यह अपरिमित है। इसकी सीमा का निर्धारण नही किया जा सकता। अस्तु यह असीम है। इस द्रव्य के अनन्त गुण हैं। इन अनन्त गुणो में से मानव मात्रदो – चित् एवं अचित् को ही जानता है। ये गुण द्रव्य या ईश्वर के ही है। इसके अतिरिक्त पर्याय भी ईश्वर के ही है। ये गुण एवं पर्याय ईश्वर के अतिरिक्त कुछ नही है। ये ईश्वर से नि.सरित होकर उसी की छाया के रूप मे है। अध्याय–तीन में इन पर यथापेक्षित विस्तृत रूप से विचार किया जायेगा।

अध्याय – 4

शंकर एवं स्पिनोजां के परम सत् ब्रह्म एवं द्रव्य की तुलनात्मक विवेचना–

शकर के ब्रह्म एव स्पिनोजा के द्रव्य के विषय मे यथोक्न्त विवेचना से स्पष्ट है कि इनका ब्रह्म एव द्रव्य बहुत कुछ माने में एक जैसा है। शकर के ब्रह्म के समान स्पिनोजा का द्रव्य या ईश्वर भी पारमार्थिक रूप से सत् है। दोनो के ब्रह्म एव द्रव्य एक समान नित्य, असीम, अपरिच्छिन्न, अपरिमित, सर्वव्यापी एव स्वयभू आदि है। इन समानताओ के बावजूद दोनो मे कुछ अपनी भिन्नता भी है। शकर को ब्रह्म के अतिरिक्त जगत् व्यावहारिक रूप मे स्वीकार होते हुए भी अन्तत· उससे विरत होना ही उन्हे अभीष्ट है। इस दृष्टि से जगत् उनके लिए असत् एव अन्तत त्याज्य है। इसके विपरीत स्पिनोजा का वाह्य जगत् यद्यपि सीमित एव अनित्य है किन्तु वह ग्राह्य एव नैतिक एव तार्किक रूप से स्वीकार्य है। वे यद्यपि सदाचारयुक्त जीवन व्यतीत करने की बात करते है किन्तु इसका अभिप्राय सन्यासी होने से नही है। इस विषय पर आगे हम सप्रमाण चर्चा करेंगे। इस प्रकार हम देखते हैं कि पौर्व एव पाश्चात्य संस्कृति एव पारमार्थिक लक्ष्य की

दृष्टि से यद्यपि इन दोनो (शंकर और स्पिनोजो) के ब्रह्म एव द्रव्य में यत्किचित भिन्नता है किन्तु बहुत कुछ माने मे यथोक्न्त इन दोनो में समानता है, जिन पर हम अध्याय चार मे विस्तार से विचार करेगे।

अध्याय – 5

शंकर एवं स्पिनोजा की बन्धन एवं मोक्ष सम्बन्धी विचारधारा की विवेचनाः–

शकर एव स्पिनोजा के दर्शन मे क्रमश ब्रह्म एव द्रव्य को ही परम सत् माना गया है। शकर के अनुसार आत्मा ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को अज्ञानता वश नही जान पाती एवं अपने को अनित्य, परिच्छिन्न जीव के रूप मे मानने लगती है। आत्मा का अज्ञान से युक्त होना ही शकर के अनुसार बन्धन है। आत्मा के बन्धन युक्त होने पर माया अनेक रूपात्मक जगत् की सृष्टि करती है। शंकर के अनुसार साधन चतुष्टय आदि के द्वारा अज्ञान के नष्ट होने के पश्चात् आत्मा को अपने वास्तविक रूप का ज्ञान होता है एव इस स्थिति में "अह ब्रह्मास्मि" की अनुभूति ही मोक्ष है।

स्पिनोजा के अनुसार जब मनुष्य अपने संवेगों एवं वासनाओं के वशीभूत होकर कर्म करता है तब वह बिल्कुल पराधीन होता है। वह अपने

का स्वामी नही रहता। वह भाग्य के पराधीन रहता है। वह अच्छे का अनुशीलन एव बुरे का परित्याग नहीं कर पाता। स्पिनोजा के अनुसार यही मानव का बन्धन (Bondage) है।

स्पिनोजा के अनुसार वासनायुक्त आचरण के विपरीत तर्कयुक्त सयमित आचरण करना मानव के लिए श्रेयष्कर है। ऐसा आचरण करने वाला स्वतन्त्रहोकर भी नियमो एव कानून के अधीन ही आचरण करता है। ऐसे तर्क पूर्ण आचरण से ही आदर्श समाज की सरचना सभव है। तर्कपूर्ण सयमित आचरण करने वाला अपने आत्मानन्द के लिय प्रयत्नशील रहते हुए अन्य के भी आत्मानन्द का प्रयास करता है। स्पिनोजा की नियतिवादी विचारधारानुसार तर्कपूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए आत्मानन्द की अनुभूति ही स्वतन्त्रता या मुक्ति (Freedom) हैं। यह स्वतन्त्रता ही मानव का परम श्रेयस या परम लक्ष्य है।

इस प्रकार यथोक्त शंकर एव स्पिनोजा के बन्धन एवं मोक्ष की विचारधाराओं में बहुत कुछ समानता है, जिस पर हम आगे विस्तृत रूप से विचार करेगे।

अध्याय – 6

उपसंहार –

उपर्युक्त प्रकारेण शंकर एवं स्पिनोजा के परम सत् एव इन पर तुलनात्मक रूप से विचार करने के साथ–साथ इनके बन्धन या मोक्ष या मुक्ति पर दृष्टिपात करने से सुस्पष्ट है कि इन दोनों की दार्शनिक विचारधारा अद्वैतवाद की समर्थक है। इनके विचारो मे बहुत कुछ समानता है। दोनों का ब्रह्म एव द्रव्य बहुत कुछ माने मे एक समान है। जगत संबंधी विचारो मे भी बहुत कुछ समानता है। बधन एव मोक्ष के बारे में कुछ भिन्नता अवश्य है किन्तु दोनो मे मूलत आत्मा का काम–वासना से युक्त होकर अपने वास्तविक रूप को भूलना ही बन्धन माना है तथा आत्मा द्वारा अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान होना ही मोक्ष है। यद्यपि इसके प्राप्त करने तथा प्राप्त होने पर (मोक्षावस्था में) आचरण करने के बारे में दोनों में कुछ अन्तर अवश्य है किन्तु मूलत दोनो इस क्षेत्रमे भी समान विचार वाले है। इन बिन्दुओ पर विस्तृत रूप से आगे अध्याय – छ· में विचार किया जायेगा।

इस प्रकार शंकर एव स्पिनोजा की दार्शनिक विचारधाराओ पर विहगम दृष्टिपात करने से सुस्पष्ट है कि इनकी विचारधारा द्वैतवाद आदि दार्शनिक विराधो से रहित है। आधुनिक भौतिकवादी जगत मे अनेक प्रकार की विलासिता मे लिप्त मानव के लिए शकर एवं स्पिनोजा अपने ढंग के अद्वितीय दार्शनिक हैं। इनके द्वारा मानव का अतीव कल्याणकारी पथ प्रदर्शन हुआ है। यह शोध–प्रबन्ध शंकर एव स्पिनोजा के दर्शन मे सत्ता के स्वरूप का तुलनात्मक अध्ययन करने का एक विनम्र प्रयास है। यद्यपि इसका यह कथमपि अभिप्राय नही है कि इसके पूर्व ऐसा कोई प्रयास नहीं हुआ है अथवा जो प्रयास हुआ है, वह अच्छी कोटि का नही है। प्रत्युत इस शोध प्रबन्ध के माध्यम से शकर एवं स्पिनोजा के पौर्व एवं पाश्चात्य विचारो को एक समन्वित रूप मे समझने का प्रयास है। अस्तु यह ग्रन्थ उक्त रूप मे विद्वानो को एक सुअवसर प्रदान कर सकेगा।

इसके अतिरिक्त यह शोध–प्रबन्ध शंकराचार्य एव स्पिनोजा के दर्शन में अभिरूचि रखने वाले एव जिज्ञासु शोध कर्ताओं के लिए उपयोगी हो तभी शोध की सार्थकता होगी। इन दोनों विचारकों के दर्शन मे अभिव्यक्त विचारधाराये शुष्क तर्कजाल एव बौद्धिक अमूर्तीकरण नही, बल्कि मानव की सांसारिक पीडा को शान्ति प्रदान करने वाली है। शकर एवं

स्पिनोजा दोनो का लक्ष्य परम कल्याण की उस अवस्था को प्राप्त कराना है जहा समस्त ब्रह्माण्ड एक ही चैतन्य आत्म तत्व से आलोकित हो उठता है।[1]

इनके लिये आत्मानुभूति एव आत्मानन्द ही परम लक्ष्य होता है। ऐसे मानव द्वारा ही आदर्श समाज की सकल्पना को मूर्त रूप दिया जा सकता है। ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' का सदुपदेश देना एवं मानव हृदय मे इसका बीजारोपण करना – आदि लक्ष्यो की पूर्ति इसके द्वारा सहज रूप में सभव है।

शकर एव स्पिनोजा दोनो पौर्व एव पाश्चात्य दार्शनिक है। इन दोनो दार्शनिको के विचारो की समालोचना पौर्व एव पाश्चात्य दर्शन का जहा एक ओर समन्वित रूप देखने का सुअवसर प्रदान करेगी वहीं दूसरी ओर पौर्व एवं पाश्चात्य सभ्यता एव संस्कृति से प्रभावित दार्शनिक विचारधारा के समन्वित रूप का अनुशीलन भी करायेगी। यह शोध प्रबन्ध समस्त सामाजिक प्रदूषणो का समापन एव मानव कल्याण का प्रत्यार्पण कर परम श्रेयस अथवा मोक्ष या मुक्ति (Freedom) की प्राप्ति का एक सुव्यवस्थित मार्ग प्रस्तुत करेगा एवं इस मार्ग का अनुशीलन कर नियतिवादी विचारधारा

---

[1] विद्याविनय सम्पन्नो विद्वान विनीत च यो ब्राह्मण· तस्मिन् ब्राह्मणे गवि हस्तिनि शुनिच एव श्वपाके च पण्डिता. समदर्शिन.।

– शाँकर भाष्य – गीता – 5 – 18

के अनुसार सदाचार तथा तर्कपूर्ण आचरण करते हुए स्थित प्रज्ञ का जीवन व्यतीत करने वाला भौतिकवादी विभीषिका से बच सकेगा, नैतिकता पूर्ण आचरण कर सकेगा, आत्म ज्ञानी एव आत्मानन्द प्राप्त करने वाला बन सकेगा, कि बहुना वह ईसा मसीह एव महात्मा गॉधी बन सकेगा। इस शोध प्रबन्ध मे शोध कर्ता ने जो विचार प्रस्तुत किये है, वह उक्त लक्ष्य की प्राप्ति मे जितना अधिक सफल हो सकेगा, शोधकर्ता अपने परिश्रम को उतना ही सार्थक समझेगा।

शोधकर्ता की बहुत प्रारम्भ से ही ऐसी इच्छा रही है कि वह शकर एव स्पिनोजां की विचारधाराओ के बारे में विस्तृत अध्ययन कर, उनकी समानता एवं असमानता को दृष्टि मे रखते हुए कुछ उपयोगी विचार प्रस्तुत कर सके। इस इच्छा के फलस्वरूप यह शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करने की भावना उद्भूत हुई। शोधकर्ता की प्रारम्भ से ही शंकर एवं स्पिनोजा के दर्शन के प्रति बडा ही लगाव रहा है। यह इच्छा वंशानुक्रम एवं वातावरण के कारण और भी द्विगुणित हो गयी क्योकि मेरे पूज्य पिता डॉ0 गजेन्द्र नारायण मिश्र जो कि शकर एवं अरविन्द के विचारों के एक परम सुविज्ञ एव चिन्तक रहे है, द्वारा सदैव अद्वैतवादी विचारधारा का सदुपदेश मिलता रहा है। उनकी प्रेरणा मेरे इस कार्य को पूर्ण करने में परम सहयोगी रही है। इसके अतिरिक्त शकर दर्शन के बारे में विश्वविख्यात एवं लब्ध प्रतिष्ठ

विद्वान स्वर्गीय पूज्यपाद प्रो0 शिव शकर राय, भूतपूर्व विभागाध्यक्ष दर्शनशास्त्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद का उद्‌बोधन एव आशीर्वचन भी इस शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने में बडा सहयोगी रहा है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद के दर्शनशास्त्रके पूर्व विभागाध्यक्ष प्रो० देवकी नन्दन द्विवेदी का आशीर्वचन एव प्रेरणा तथा प्रो0 राम लाल सिह इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद का समय–समय पर प्राप्त उद्‌बोधन भी इस शोध प्रबन्ध को मूर्त रूप देने का प्रमुख कारण रहा है। जहॉ तक इस कार्य को सम्पन्न करने एवं पूर्ण करने की बात है, इस दृष्टि से पूज्या माता श्रीमती शान्ती देवी एव अग्रज श्री जनार्दन प्रसाद मिश्र एव श्री विमल कुमार मिश्र का आशीर्वाद एव आशीर्वचन एव सदुपदेश भी परम सहयोगी रहा है। मेरे भविष्य के लिए अहर्निश चिन्तनशील अग्रज श्री इन्दु प्रकाश मिश्र के बारे मे जितना कहा जाय वह कम ही है। यह कार्य अनेक बाधाओं के बावजूद सम्पन्न हो सका, यह उनकी सदाशयता, महानता एव अनुज के प्रति परम आत्मीयता का द्योतक रहा है। अन्य परिवार के लोगों एव आत्मीय जनों का सहयोग भी इस कार्य को मूर्त रूप देने मे बडा ही सहायक रहा है। मेरे भविष्य के बारे मे अहर्निश आशीर्वाद देने वाले पूज्यपाद ताऊ प0 रमाकान्त मिश्र एव मेरे मार्ग दर्शक एव शुभेच्छु विद्वान डॉ0 शिवदत्त तिवारी, प्राचार्य नेशनल पी0जी0 कालेज बडहलगज, गोरखपुर तथा इस संस्था के सर्वस्व

प0 हरिशकर तिवारी, मत्री उ0प्र0 सरकार का आशीर्वचन एवं सहयोग भी शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने मे मनोबल को बढाने वाला रहा है। जहॉ तक इस शोध प्रबन्ध को पल्लवित पुष्पित कर मूर्त रूप देने वाले विद्वान डॉ0 हरिशकर उपाध्याय, दर्शन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद की बात है उनके बारे मे जितना कहा जाय, वह कम है। आज के भौतिकवादी युग मे इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पूर्व विद्वान प्रोफेसर्स की निर्लिप्त भाव से शिष्यो के मार्गदर्शन करने की परम्परा को सजोये हुए उन्होने जिस प्रकार मेरे बी0ए0 मे अध्ययन करते समय से अद्यावधि मेरा मार्ग दर्शन किया, वह उनकी विद्वता एव महानता का द्योतक है। उन्होंने अपनी अनेक व्यस्तता के बावजूद जिस प्रकार मेरा मार्ग दर्शन किया, सदुपदेश दिया, उसी का प्रतिफल रहा कि यह शोध प्रबन्ध समय से विधिवत मूर्त रूप ले सका। यथोक्त इन सब के आशीर्वचन, सहयोग, सदुपदेश देने वालो के प्रति जितना ही आभार व्यक्त करूँ वह कम ही है। फिर भी औपचारिकता के रूप में मै इन सब का आभारी हूँ कि इनके सहयोग से मेरा शोध प्रबन्ध ''शकर और स्पिनोजा के दर्शन मे सत् का स्वरूप'' मूर्त रूप ले सका।

अन्त मे मै उन विद्वज्जनो का और भी आभारी होऊँगा जो इस शोध प्रबन्ध को शकर और स्पिनोजा के अद्वैतवादी पुनीत दार्शनिक विचारो के अनुशीलन के योग्य समझेगे, जो इसे विश्व बन्धुत्व एवं विश्व कल्याण का

बीजारोपण करने वाला समझेगे, जो इसे सदाचार तर्क पूर्ण एव स्थित प्रज्ञ जैसा जीवन व्यतीत करके आत्मानन्द की प्राप्ति का साधन समझेगे।

राजेश कुमार मिश्र
शोधकर्त्ता
राजेश कुमार मिश्र
शोधछात्र– दर्शनविभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
एवं
प्रवक्ता
दर्शनविभाग
नेशनल पी०जी० कालेज बड़हलगंज
गोरखपुर

अध्याय – 1

शाङ्कर वेदान्त एवं स्पिनोजा की दार्शनिक परम्परा का उद्भव और विकास :–

वेदान्त का शाब्दिक अर्थ है – वेद का अन्त अर्थात् उपनिषद्। वस्तुत पूर्व मे इस शब्द से उपनिषदों का बोध होता था। बाद मे उपनिषदो के आधार पर विकसित विचारो को भी वेदान्त शब्द से अभिहित किया जाने लगा है। उपनिषद् वेद के अन्तिम साहित्य के रूप मे है। वैदिक काल मे तीन प्रकार के साहित्य का रूप मिलता है, जो निम्नवत् है –

(1) **वैदिक मन्त्र** :– यह ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद की विभिन्न सहिताओ मे सकलित है।

(2) **ब्राह्मण भाग** .– इसके अन्तर्गत वैदिक कर्मकाण्ड की व्याख्या है। ब्राह्मणों के अन्तिम भाग आरण्यक है। वनों की एकान्तता मे पढे जाने के कारण इन्हे आरण्यक कहा गया है।[1] इनमे यज्ञो की गहनता तथा लाक्षणिकता का बोध कराते हुए सर्वप्रथम शुष्क यज्ञवाद के स्थान पर

---

[1] अरण्याध्ययनादेतद् आरण्यकमितीर्यते।
अरण्ये तदधीयीतेत्येव वाक्य प्रवक्ष्यते।।

दार्शनिक विचार का प्रतिपादन किया गया। इनमे कर्म से ज्ञान की ओर संक्रमण है।

(3) **उपनिषद्** :– अन्तिम तीसरा भाग उपनिषद् हैं जिसमें दार्शनिक तथ्यो की विस्तृत विवेचना है। इसमे ब्रह्म, जीव, जगत आदि की विस्तृत रूप मे व्याख्या की गयी है। व्यापक अर्थ मे ये तीनो ही श्रुति या वेद है।

जहॉ तक वेदो मे उपलब्ध दार्शनिक प्रवृत्तियो की बात है, इस दृष्टि से वेदो का अनुशीलन करने पर विदित होता है कि वैदिक काल में लोग विशेष कर विभिन्न देवताओ की पूजा करते थे और उनकी प्रार्थना करते थे। वैदिक ऋषियो को मृत्यु से भय था। सासारिक दुःखों से छूटने की अभिलाषा थी। यही कारण है कि वे दीर्घायु की प्रार्थना भी करते थे। वे परम सुख की प्राप्ति के लिए भी देवताओ की पूजा करते थे। ज्ञान और सुख की प्राप्ति जीवात्मा और परमात्मा के ऐक्य पर सम्भव माना जाता था। अत वेदो के अनुसार जीवात्मा और परमात्मा का ऐक्य ही परम लक्ष्य को पाने का एक–मात्र साधन माना गया है। वस्तुतः वेदो को दो भागो – प्रथम – कर्मकाण्ड और दूसरा – ज्ञानकाण्ड, मे विभाजित किया गया है। कर्मकाण्ड मे उपासनाओ पर विचार है और ज्ञानकाण्ड में आध्यात्मिक

चिन्तन है। कर्मकाण्ड मे यज्ञ की महत्ता पर बल दिया गया है। इस प्रकार वेद मे अनेक देवी–देवताओं – वरूण, मित्र, इन्द्र, वायु, रूद्र, चन्द्रमा, विष्णु, सोम आदि का वर्णन है। अतएव वैदिक विचारधारा को बहुदेववाद (Polytheism) कहा जाता है। किन्तु वेदो को बहुदेववादी कहना एक पक्षीय होगा क्योकि वेदो मे जिस देवता की प्रशसा की गयी है, प्रायः उसको कर्ता–धर्ता सब कुछ माना गया है। इस प्रकार कभी अग्नि को, कभी वरूण को, कभी इन्द्र को सर्व सत्ता सम्पन्न ईश्वर मानकर उसकी स्तुति की गयी है। ऐसे मे यह पुष्ट हो जाता है कि सभी देवताओं को एक ही ईश्वर के भिन्न–भिन्न रूप या शक्ति के रूप मे कहा गया है। इसकी पुष्टि ऋग्वेद की – "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" मन्त्र से होती है।

इस प्रकार वेद का बहुदेववाद शनैः शनैः एकेश्वरवाद मे परिलक्षित हुआ। अस्तु हम देखते हैं कि वेदान्त का मूल एकेश्वरवाद प्रकारान्तर से वेद में उपलब्ध है।

जहॉ तक वैदिक काल के दूसरे ब्राह्मण भाग की बात है, इसमे कर्मकाण्ड की विशेष रूप से व्याख्या की गयी है। ब्राह्मण ग्रन्थों का यह नाम इसलिये दिया गया है, क्योकि ब्रह्म का विस्तृत विवेचन इनका प्रधान विषय है और यहॉ पर ब्रह्म का अर्थ – बढने वाला, फैलने वाला अथवा

वितान या यज्ञ है। ब्राह्मण ग्रन्थ प्रायः गद्य मे हैं और इनमे यज्ञ की विधियो का वर्णन है। ब्राह्मण के अन्त मे कर्मो के फल और उनके विचारों का उल्लेख है। इनमे दार्शनिक विचार भी उपलब्ध है। इन्हे आरण्यक भी कहा जाता है। आरण्यक इसलिए कहा जाता है क्योकि वन मे निवास करने वालो के लिए उपासनाओं का विधिवत् उल्लेख इनमे किया गया है। आरण्यक के बाद ही दार्शनिक विचारो का विकास होता है जो उपनिषदो के रूप मे उपलब्ध होता है। वस्तुत ये उपनिषद् ही दार्शनिक विचारधाराओ के मुख्य स्रोत है।

उपनिषद् शब्द – 'उप', 'नि' एवं 'सद्' धातु से निष्पन्न होता है। 'उप' का अर्थ – समीप, 'नि' का अर्थ – ध्यान पूर्वक एवं 'सद्' का अर्थ – बैठना या प्राप्त करना है। इस प्रकार उपनिषद् शब्द का अर्थ है – शिष्य का गुरू के समीप बैठकर ध्यान पूर्वक परम् गूढ तत्व को सुनना, जिससे शिष्य की अविद्या अथवा अज्ञान का नाश हो एवं इसे ब्रह्म की प्राप्ति हो सके। इस प्रकार उपनिषद मुख्य रूप से ब्रह्म विद्या का वाचक है। उपनिषदो की कुल संख्या 108 बतायी जाती है, किन्तु प्रामाणिक तथा महत्वपूर्ण उपनिषद् ग्यारह हैं जिन पर शंकराचार्य के भाष्य उपलब्ध हैं। ये ग्यारह उपनिषद् – ईष, केन, प्रश्न, कठ, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, मुण्डक, छान्दोग्य, बृहदारण्यक और श्वेताश्रतर है। इनमे कुछ पद्य मे तथा कुछ गद्य

मे तथा कुछ गद्य–पद्य में है। इन उपनिषदो मे छान्दोग्य और बृहदराण्यक सबसे प्राचीन माने जाते है। ये उपनिषद् ही भारतीय दर्शन की निधि एवं मूल स्रोत है।

उपनिषद मे अद्वैत, विशिष्टाद्वैत एवं द्वैतपरक वाक्य उपलब्ध है किन्तु इनका मूल लक्ष्य अद्वैत ही है। भारतीय दर्शन की कोई ऐसी प्रमुख विचारधारा नही है, जिसका उद्गम उपनिषद् मे न हो। वेदान्त की – प्रस्थानत्रयी (उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, एव गीता) मे उपनिषद् ही मूल – प्रस्थान है। इन उपनिषदो मे आत्मा जीव, ब्रह्म, जगत् आदि के बारे में विस्तृत व्याख्या की गयी है और ये उपनिषद् ही वस्तुत· वेदान्त है और इनके अन्तर्गत ब्रह्म, जीव, जगत् माया एव मोक्ष के सम्बन्ध मे उपलब्ध विचारधाराये ही शकर आदि दार्शनिको की विचारधाराओ के मूल स्रोत हैं। अस्तु शकर के "सत्" सम्बन्धी विचारधारा को मूलतः एव वास्तविक रूप से समझने के लिये आवश्यक होगा कि इन उपनिषदों की भी दार्शनिक विचारधाराओ पर विहगम दृष्टिपात किया जाय। एतदर्थ मुख्य गयारह उपनिषदो की ब्रह्म, जीव, जगत् आदि सम्बन्धी विचारधाराओं पर संक्षेप मे विचार किया जाना समीचीन है। इनका विवरण निम्नवत् है :–

(1) ईशावास्य उपनिषद् :–

इस उपनिषद् मे परमेश्वर को सर्वव्यापी बताया गया है। ईश्वर विश्व के चर–अचर सभी पदार्थ मे व्याप्त है। उनके परे कुछ भी नही हैं। उस परमेश्वर का स्मरण करते हुए तथा अनासक्त भाव से कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीने की इच्छा व्यक्त की गयी है। इस उपनिषद् मे परमेश्वर के द्वारा उपलब्ध यत्किचित मे जीवन निर्वाह करते हुए निर्लिप्त भाव से जीने की इच्छा व्यक्त की गयी है।[1] इस प्रकार अनासक्त रूप से कर्म करते हुए जीव बन्धन मे नही पडता। [2] यह ही ईशावास्योपनिषद् की मुख्य दार्शनिक विचारधारा है।

(2) छान्दोग्य उपनिषद् :–

इस उपनिषद् मे परमात्मा की अनेक प्रकार की उपासनाओं का उल्लेख है। इस उपनिषद् में आचार–विचार और आहार–विहार की शुद्धि पर जोर दिया गया है। आहार के शुद्ध होने पर अन्त.करण शुद्ध होता है

---

[1] ईशावास्यमिद सर्व यत्किच जगत्यॉंजगत्।
तेन त्यक्तेन भुजीथा मागृध कस्यस्विद् धनम् ।।
– ईशावास्य उपनिषद्, 1

[2] कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समा ।
एव त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।
– ईशावास्य उपनिषद्, 2

और अन्त करण शुद्ध होने की स्थिति मे निश्चल स्मृति प्राप्त होती है और निश्चल स्मृति प्राप्त होने की दशा मे समस्त मायिक ग्रन्थियो से मुक्ति मिल जाती है[1] और यह मुक्ति ही जीवन का लक्ष्य है। इस प्रकार हम देखते है कि छान्दोग्योपनिषद् मे उपासना, आचार, विचार एव आहार–विहार आदि के द्वारा अन्त करण की शुद्धि एव तत्पश्चात् मुक्ति का विधान है।

(3) बृहदारण्यक उपनिषद् :–

इस उपनिषद् मे अग्नि विद्या[2], मधु विद्या[3], वाक् विद्या[4], गायत्री उपासना[5] प्राणेपासना[6], अन्तर्यामी परमात्मा की उपासना के साथ–साथ देवयान गति और पित्रयान गति का भी, वर्णन है। निर्गुण ब्रह्म के निर्वचन मे निषेधात्मक रूप का इस उपनिषद् मे विस्तृत वर्णन है। ब्रह्म निर्विशेष, निर्गुण, निर्विकल्प, निरुपाधिक, अनिर्वचनीय, अदीर्घ है। वह वाणी और मन

---

[1] आहार शुद्धौ सत्वशुद्धि सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृति स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीना विप्रमोक्ष।
– छान्दोग्य उपनिषद् , 7/26/2

[2] स होवाच गार्ग्यो य एवायमग्नौ पुरूष एतमेवाह ब्रह्मोपास।
– बृ0 उ0 2/1/7

[3] इद वै तन्मधु दध्यङ्डाथर्वणोऽश्विभ्यामुवाच।
– बृ0 उ0 2/5/16

[4] वाग् वै ब्रह्म ।
– बृ0 उ0 4/1/2

[5] भूमिरन्तरिक्ष द्यौरित्यष्टवक्षराण्यष्टाक्षर ह वा एक गायत्र्यै पदमेतदु। – बृ0 उ0, 5/14/1

[6] प्राणे हीमानि सर्वाणि भूतानि रमन्ते सर्वाणि ह वा अस्मिन् भूतानि विशन्ति सर्वाणि भूतानि रमन्ते य एव वेद। बृ0 उ0, 5/12/1

की पहुँच के परे है।[1] वाणी उसका अभिधान नहीं कर सकती। मन उस तक पहुँच नही सकता – आदि रूपो मे ब्रह्म का अभिधान बृहदारण्यकोपनिषद् मे मिलता है।[2] बृहदारण्यकोपनिषद् मे "नेति–नेति" से उसकी अनिर्वचनीयता का बोध होता है उसकी शून्यता का नही।[3] इस प्रकार बृहदारण्यकोपनिषद् मे शकर के अद्वैत वेदान्त सम्बन्धी विचार धारा का मूल रूप बहुत कुछ देखने को मिलता है।

(4) केन–उपनिषद् :–

इस उपनिषद् मे गुरू शिष्य सवाद के माध्यम से ब्रह्म और जीव के स्वरूप के बारे में विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है।[4] इस उपनिषद् मे यक्ष, उमा एव देवताओ के एक आख्यान के द्वारा परमेश्वर ही सभी शक्तियो का स्रोत है – इसका अभिधान किया गया है। उसी की शक्ति से अग्नि और पवन आदि देवता अपने निर्धारित कार्य को सम्पन्न

---

[1] बृ0 उ0, 6/2/16

[2] येनेद सर्व विजानाति त केन विजानीयात्?
विज्ञातार अरे केन विजानीयात्?
– बृ0 उ0 2/4/14

[3] न हि द्रष्टुर्दृष्टे विपरिलोपो विद्यते अविनाशित्वात्।
– बृ0 उ0 4/3/23, 31

[4] केनेषित पतति प्रेषित मन केन प्राण प्रथम प्रैतियुक्त ।
केनेषिता वाचमिमा वदन्ति चक्षु श्रोत्र क उ देवोयुनक्ति।।
– केन उपनिषद्, 1/1

करते हैं।[1] उसी की शक्ति से, वाणी बोलती है, बुद्धि जानती है, आँख देखती है, कान सुनता है आदि–आदि।[2]

(5) कठोपनिषद् :–

इस उपनिषद् मे वाजश्रवा के पुत्र उद्दालक ने विश्वजित नामक यज्ञ किया। इस यज्ञ मे उद्दालक के द्वारा ब्राह्मणो को अशक्त गायों को दान दिया जा रहा था जो कि उद्दालक के लिए अनिष्टकारी था, जिससे क्षुब्ध होकर उद्दालक के पुत्र नचिकेता ने पिता से अपने को भी दान दिये जाने के बारे मे पूँछा कि आप मुझे किसे दान दे रहे है? क्रुद्ध होकर उद्दालक ने कहा – मै तुम्हे मृत्यु को दान दे रहा हूँ।[3] इसके पश्चात् नचिकेता शोकरहित होकर यमलोक पहुँच गया। यमराज के तीन दिन तक बाहर होने की स्थिति मे नचिकेता उनके यहॉ तीन दिन तक अतिथि रूप में औपचारिकता से रहित पडे रहे। यमराज के आने पर यथोक्त तीन रात्रियों

---

[1] तस्मै तृण निदधावेतछहेति। तदुप प्रयाय सर्वजवेन तन्न शशाक दुग्धुम्।
– केनोपनिषद्, 3/6 तस्मै तृण निदधावेतदादत्स्वेति।
तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाकादातुम्
– केन उपनिषद् 3/10

[2] तदेव ब्रह्म त्व विद्धि नेद यदिदमुपासते।
– केन उपनिषद् 1/4 से 8

[3] स होवाच पितर तत कस्मै मा दास्यसीति।
द्वितीय तृतीयं तं होवाच। मृत्यवै त्वा ददामीति। कठ उ0, 1/1/4

के अनुसार यमराज ने तीन वर माँगने को कहा। इस क्रम मे नचिकेता ने यमराज से तीन वर माँगे –

1– मेरे पिता उद्दालक की मेरे प्रति सन्तुष्ठि।[1]

2– अग्निविद्या का उपदेश[2]

3– जीवात्मा के पुनर्जन्म एव परलोक के अस्तित्व के सम्बन्ध मे पारमार्थिक ज्ञान का उपदेश।[3]

यमराज ने नचिकेता के माँगे गये तीनो वरदान दिये और इस वरदान मे आत्मा, जीवात्मा, जगत् का विस्तृत परिमार्जित अभिधान किया गया है जो वेदान्त की एक प्रकार से आत्मा है।

---

[1] यथा पुरस्ताद भविता प्रतीत औद्दालिकिरारूणिर्मत्प्रसृष्ट ।
सुख रात्री शयिता वीतमन्युस्त्वा
ददृशिवान्मृत्युमुखात्प्रमुक्तम्।।
– कठ उ0, 1/1/11

[2] त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य सन्धि त्रिकर्मकृत् तरति जन्ममृत्यू।
ब्रह्मजज्ञ देवमीऽय विदित्वा
निचाय्ये मा शान्तिमत्यन्तमेति।।
– कठ उ0 1/1/17

[3] न साम्पराय प्रतिभाति बाल प्रमाद्यन्त वित्तमोहेन मूढम्।
अय लोको नास्ति पर इति मानी पुन पुनर्वशमापद्यने मे।।

(6) प्रश्न उपनिषद् :–

इस उपनिषद् मे सुकेशा, सत्यकाम, सौर्यायणी, आश्वलायन, भार्गव और कबन्धी नामक छ ब्रह्मनिष्ठ जिज्ञासुओ के द्वारा पिप्पलाद महर्षि से – छ प्रश्न पूॅछे गये है।[1] इस उपनिषद् मे इन प्रश्नो का विस्तृत उल्लेख किया गया है। इसी दृष्टि से यह उपनिषद् प्रश्न उपनिषद् कहलाता है। इसमे प्रश्नोत्तर के माध्यम से दार्शनिक विचारो का प्रस्फुटन हुआ है। "ओडक्ार" की महिमा आदि का प्रश्नोत्तर के माध्यम से विस्तृत वर्णन है जिसके द्वारा दार्शनिक विचारधाराये प्रस्फुटित हुई हैं।

(7) मुण्डक उपनिषद् :–

इस उपनिषद् मे कुल तीन मुण्डक है और प्रत्येक मुण्डक मे दो खण्ड है। इस उपनिषद मे परा और अपरा विद्या का विस्तृत उल्लेख है। आध्यात्मिक विद्या– परा विद्या है तथा इसके अतिरिक्त सभी विषय अपरा

– कठ उ0, 1/2/6

[1] सुकेशा च भारद्वाज शैव्यश्च सत्यकाम सौर्यायणी च गार्ग्य कौसल्यश्चाश्वलायनो भार्गवो वैदर्भि कबन्धी कात्यायनस्ते हैते ब्रह्मपरा ब्रह्मनिष्ठा पर ब्रह्मान्वेषमाणा एष ह वै तत्सर्व वक्ष्यतीति ते ह समित्पाणयो भगवन्त पिप्पलादमुपसन्ना।

– प्रश्न उपनिषद्, 1/1

विद्या के अन्तर्गत आते है। इस उपनिषद् मे गहन दार्शनिक विचारधाराओ का परा विद्या के अन्तर्गत उल्लेख किया गया है।[1]

(8) माण्डूक्य उपनिषद् :–

इस उपनिषद् मे "ओ३म्" का विस्तृत वर्णन किया गया है। अ, उ, म – तीनो से निर्मित ओ३म् पर विस्तृत चर्चा हुई है। ओ३म् का पर ब्रह्म से तादात्म्य स्थापित किया गया है।[2] शकराचार्य के गुरू गोविन्दपादाचार्य के गुरू गौडपादाचार्य ने माण्डूक्य उपनिषद् के आधार पर गौडपादीय–कारिका का निर्माण किया है, जो अद्वैतवेदान्त का प्रथम उपलब्ध ग्रन्थ है। इस प्रकार हम देखते है कि माण्डूक्य उपनिषद् की आध्यात्मिक चर्चाये भी अद्वैत वेदान्त की आधारशिला है और इसमे पर ब्रह्म के विषय मे अद्वैत सम्बन्धी विचारधाराओ का प्रस्फुटन हुआ है।[3]

---

[1] मुण्डक उपनिषद् 1/2/12

[2] सर्व ह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पात्। – माण्डूक्य उप, 2

[3] अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्य प्रपंचोपशम शिवोऽद्वैत एवमोकार आत्मैव सविशत्यात्मनाऽऽत्मान य एव वेद य एव वेद। – माण्डूक्य उप0, 12

(9) तैत्तिरीय उपनिषद् :–

इस उपनिषद् मे सृष्टि के विकास क्रम को पचकोषों द्वारा बताया गया है। ये कोश – अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय है। इनमे अन्नमय कोष द्रव्य या भौतिक पदार्थ का स्तर है। यह ब्रह्म का निम्नतम् रूप है, जहॉ चैतन्य सुषुप्तावस्था मे होने के कारण लुप्त सा प्रतीत होता है। दूसरा–प्राणमय कोष है। यह अन्नमय कोष के अन्तर्गत है एव शरीर मे गति देने वाली प्राण शक्तियो से निर्मित है। यहां चैतन्य का स्फुरण होता है। यह वनस्पति जगत् एव प्राणि जगत् का स्तर है। इसके ऊपर मनोमय कोष है। यह प्राणमय कोष के अन्तर्गत है एवं मन पर निर्भर है। इसमे स्वार्थमयी इच्छाये है। यह इन्द्रिय संवेदन और बुद्धि की प्रथमावस्था है जहॉ ज्ञान सहज वृत्ति जन्य होता है। यह मानव तथा पशु का सम्मिलित आहार, निद्रा, भय एव मैथुनादि का स्तर है। इसके ऊपर मनोमय कोष के अन्तर्गत विज्ञानमयकोष है। जिसमें केवल मानव का ही अधिकार है। यह तर्क एव विविध ज्ञान–विज्ञान का स्तर है। यह स्तर सविकल्प बुद्धि का है। इसमे ज्ञाता और ज्ञेय का भेद करने वाला ज्ञान निहित है। इसके बाद सर्वोच्च आनन्दमय कोष है। जो विज्ञानमय कोष के अन्तर्गत है। यह ब्रह्म के सत्, चित् और आनन्द का स्फुरण है। यहॉ ज्ञाता

और ज्ञेय का भेद समाप्त हो जाता है। यह निर्विकल्प प्रज्ञा का स्तर है। यह पारमार्थिक और पूर्ण है। यद्यपि कोष होने के कारण इसमें विकल्प का लेश बना रहता है। वस्तुत ब्रह्म इन पञ्चकोशो के भी पार है। वह निर्विकल्प, निर्गुण, और अनिर्वचनीय है। इस प्रकार पचकोषो का वर्णन करते हुये ब्रह्मानन्द की अनन्तता का वर्णन किया गया है।[1]

विशेष उल्लेखनीय है कि इस उपनिषद् में दीक्षान्त उपदेश भी है। जो भारतीय दर्शन के सदाचार सम्बन्धी विचारो का मूल है।[2] इस प्रकार उपर्युक्त प्रकारेण वेदान्त की विशेषकर शकर की दार्शनिक विचारधाराओ मे तैत्तिरीय उपनिषद् का भी विशेष स्थान है।

(10) ऐतरेय उपनिषद् :–

ऐतरेय उपनिषद् मे सृष्टि क्रम का वर्णन किया गया है। इस उपनिषद् मे उल्लेख है कि ऋषि वामदेव को अपनी गर्भावस्था मे ब्रह्म का ज्ञान हो गया था और इस बात की अनुभूति हो गयी थी कि जन्म एव मरण

---

[1] तैत्तिरीय उपनिषद्, 2/8

[2] वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति। सत्यं वद्, धर्म चर, स्वाध्यायान्मा प्रमद.। आचार्याय प्रिय धनमाहृत्य प्रजातन्तु मा व्यवच्छेत्सी·। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्।– तै0 उ0, 1/11

शरीर का होता है न कि आत्मा का।[1] आत्मा के इस अमरत्व का ज्ञान उपलब्ध कर ऋषि वामदेव मुक्त हो गये थे।[2] इस प्रकार ऐतरेय उपनिषद् में अद्वैत वेदान्त की मूल आत्मा का अवलोकन होता है।

(11) श्वेताश्वतर उपनिषद् :–

इसमे छः अध्याय है जिसमे जीव और ब्रह्म के स्वरूप पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। जीव का लक्ष्य इस जगत के स्रष्टा परमेश्वर का ज्ञान प्राप्त करना होता है एव जब उसे इस परमेश्वर का ज्ञान प्राप्त हो जाता है तब वह अमर हो जाता है।[3] जीवात्मा और परमात्मा, दो पक्षियों के

---

[1] तदुक्तमृषिणा–
गर्भे नु सन्नन्वेषाणवेदमह देवाना
जनिमानि विश्वा।
शतं मा पुर आयसी ररक्षन्नधः श्येनो
जवसा निरदीयमिति।।
गर्भ एवैतच्छयानो वामदेव एवमुवाच।
– ऐतरेय उप0, 2/1/5

[2] स एव विद्वानस्माच्छरीरभेदादूर्ध्व उत्क्रम्यामुष्मिन्।
स्वर्गे लोके सर्वान्कामानाप्त्वामृत समभवत्।
– ऐतरेय उप0, 2/1/6

[3] य एको जालवानी शत ईशनीभि सर्वाल्लोकानी शत ईशनीभि·।
य एवैक उद्भवे सम्भवे च य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति।।
– श्वेताश्वतर उप0, 3/1

समान मानव शरीर रूपी पीपल के वृक्ष पर निवास करते हैं।[1] इस मानव शरीर रूपी वृक्ष पर निवास करने वाला जीवात्मा रूपी पक्षी आसक्ति मे मग्न रहने के कारण दु खी बना रहता है, किन्तु जब वह अपने से भिन्न परमात्मा रूपी पक्षी के स्वरूप एव महिमा को जान लेता है तब वह समस्त दु:खो से रहित हो जाता है।[2]

इस प्रकार उपनिषदो मे द्वैतवाद भी वस्तुत. अद्वैतवाद का ही प्रतिपादक है। उपनिषदो मे अनेक स्थलो पर यह उल्लिखित किया गया है कि जगत् मे ब्रह्म ही सब कुछ है। नानात्व अयथार्थ है। इस जगत् में जो कुछ प्रत्यक्ष एव परोक्ष है, वह ब्रह्म ही है। जीव और जगत् सब ब्रह्म ही है। उपनिषद् के चार महावाक्य – प्रज्ञानं ब्रह्म[3], अहं ब्रह्मास्मि[4], तत्वमसि[5], अयमात्मा ब्रह्म[6], – भी ब्रह्म की अद्वैतता का ही प्रतिपादन करते है।

---

[1] द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समान वृक्ष परिषष्वजाते।
तयोरन्य. पिप्पल स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योअभिचाकशीति।
– श्वेता0 उप0 4/6

[2] समाने वृक्षे पुरूषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः।।
– श्वेता उप0 4/7

[3] ऐतरेय उपनिषद् 3/1/3

[4] बृहदारण्यक उपनिषद् 1/4/10

[5] छान्दोग्य उपनिषद् 6/8/7

[6] माण्डूक्य उपनिषद् , 2

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपनिषदो में ब्रह्म, जीव, जगत, माया, मोक्ष के बारे मे विस्तृत व्याख्याये हुई है। विभिन्न उपनिषदो मे इनके बारे मे अभिहित विचारों मे कही–कही विरोधाभास भी मिलता है। इन विरोधाभासो मे सामजस्य बैठाने का अनेक ऋषियो, महर्षियों द्वारा सम्यक प्रयास किया गया और अपने–अपने ढग से यह प्रयास होता रहा है। उपनिषदो मे वर्णित "ब्रह्म" सम्बन्धी विचारो मे अनेक असंगतियॉ है। इन्ही असगतियो मे सामजस्य बैठाने के क्रम मे – ब्रह्म सूत्र – का आविर्भाव हुआ है। अस्तु वेदान्त की आत्मा – ब्रह्म सूत्र – पर विचार करना समीचीन होगा।

ब्रह्म सूत्र :–

ब्रह्म–सूत्र की रचना वादरायण ने की। इसकी रचना श्रीमद्भगवद्गीता से पूर्व हुई है; इसकी पुष्टि गीता से होती है।[1] ब्रह्म सूत्र में ब्रह्म के सिद्धान्त की व्याख्या हुई है। इसी कारण इसे "ब्रह्म सूत्र" कहा जाता है। ब्रह्म सूत्र को "वेदान्त–सूत्र" भी कहा जाता है क्योकि वेदान्त दर्शन का सूत्र रूप ही ब्रह्म–सूत्र है। ब्रह्म सूत्र के सूत्रो की रचना उत्तर

---

[1] ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधै पृथक्।
ब्रह्मसूत्र पदैश्चैव हेतुमदभिर्विनिश्चितै ।।
– श्रीमद्भगवद्गीता 13/4

मीमासा के दर्शन के ब्रह्म विषयक जिज्ञासा के समाधान के लिए हुई है।[1] अस्तु ब्रह्म सूत्र को – "उत्तर मीमासा – भी कहते है। इसी प्रकार उत्तर मीमासा दर्शन मे शरीरस्थ आत्मा की ब्रह्म रूपता पर विचार किया गया है। अतएव ब्रह्मसूत्र को – "शारीरिक सूत्र" भी कहा जाता है।

ब्रह्म सूत्र के सूत्रो की सख्या मे अन्तर पाया जाता है। गीता प्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित ब्रह्मसूत्र मे 556 सूत्र है जबकि ब्रह्मसूत्र के शांकर भाष्य मे 555 सूत्रो का अभिधान है। इसी प्रकार ब्रह्मसूत्र के रामानुज भाष्य मे 545, निम्बार्क के भाष्य मे 549, मध्वाचार्य के भाष्य मे 564 और बल्लभाचार्य के भाष्य मे 554 सूत्रो का उल्लेख है।

ब्रह्म सूत्र मे कुल चार अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय के अन्तर्गत चार पाद है। प्रथम अध्याय मे ब्रह्म सम्बन्धी विचार हैं। ब्रह्म को इस जगत् का अभिन्न निमित्त एव उपादान कारण कहा गया है। ब्रह्मसूत्र में सृष्टि कर्तृत्व का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि इस जगत् का उद्भव, स्थिति और प्रलय ब्रह्म से ही होता है।[2] श्रुतियो में ब्रह्म को निर्गुण और अकर्ता के रूप मे उल्लिखित किया गया है। निर्गुण और अकर्ता का

---

[1] अथातो ब्रह्मजिज्ञासा।

– ब्रह्मसूत्र 1/1/1

[2] जन्माद्यस्य यतः । – ब्रह्मसूत्र 1/1/2

अभिप्राय सामान्य अर्थ से नही है। ब्रह्म मे परस्पर विरोधी गुण पाये जाते हैं। वह अकर्ता होकरके भी सृष्टि का कर्ता है। वह निर्गुण हो करके भी सभी गुणो का आधार है किन्तु वह इन सब से परे निर्गुण एवं अकर्ता भी है। ब्रह्म सभी विशेषणो से युक्त होकर निर्विशेष भी है। ब्रह्म सूत्र के इस विचार की पुष्टि शास्त्रों से भी होती है।[1] इसीलिए उन्हे जगत् का कर्ता मानना सर्वथा उचित है। ब्रह्म सूत्र के अनुसार ब्रह्म ही जगत् का निमित्त और उपादान कारण है। जिस प्रकार घडे की उत्पत्ति मे कुम्भकार निमित्त कारण एव मिट्टी उपादान कारण है उसी प्रकार इस जगत् की रचना मे समन्वित रूप से ब्रह्म निमित्त एव उपादान दोनों कारण है।[2] ब्रह्म की सर्वज्ञता, आनन्दमयता[3] और विराटरूपता का प्रतिपादन करते हुए ब्रह्म सूत्र मे इसे चार हेतुओ के द्वारा उसे परा एव अपरा दोनो प्रकृतियो से श्रेष्ठ बताया गया है। ये हेतु निम्न प्रकारेण है –

(1) **सेतु** – ब्रह्म सबको धारण करने वाले सेतु है।

(2) **उन्मान** – ब्रह्म सबसे महान एवं बडे है।

(3) **सम्बन्ध** – ब्रह्म जीव और जगत के स्वामी एवं शासक हैं।

---

1 शास्त्रयोनित्वात् – ब्रह्मसूत्र 1/1/3
2 तत्तु समन्वयात् – ब्रह्मसूत्र 1/1/4
3 आनन्दमयोऽभ्यासात् – ब्रह्मसूत्र 1/1/12

(4) **भेद** – ब्रह्म और जीव में भेद है। ब्रह्म जीव की अपेक्षा महान है।

इस प्रकार ब्रह्मसूत्र मे ब्रह्म के बारे मे विस्तृत व्याख्या की गयी है। ब्रह्म सूत्र मे उपनिषदो मे वर्णित जीव, जगत् के पारस्परिक प्राप्त विरोधों मे सामंजस्य स्थापित किया गया है। इस प्रकार सभी उपनिषद् वाक्यो में समन्वय स्थापित करने के कारण ही प्रथम अध्याय को – समन्वयाध्याय कहा जाता है।

द्वितीय अध्याय मे साख्य दर्शन के प्रधान कारणवाद, वैशेषिक दर्शन मे निरूपित परमाणु कारणवाद तथा जैन मत एव बौद्ध मत आदि के सिद्धान्तों का खण्डन किया गया है। द्वितीय अध्याय मे पहले अध्याय की बातो की तर्क द्वारा पुष्टि की गयी है तथा विरोधी दर्शनों का खण्डन किया गया है। इसीलिये ब्रह्म सूत्र के द्वितीय अध्याय को – विरोध – परिहार अध्याय या अविरोधाध्याय अभिहित किया गया है।

तृतीय अध्याय मे परमात्मा को प्राप्त कराने वाली "साधना" का उल्लेख है। अर्थात् इसमें ब्रह्म विद्या और उपासना के सम्बन्ध में विचार किया गया है। इसीलिये ब्रह्मसूत्र की इस तृतीय अध्याय को –

उपासनाध्याय या साधनाध्याय – कहते है। इसके अतिरिक्त इस अध्याय मे जीव की मरणोत्तर गतियो का भी वर्णन किया गया है।

ब्रह्म सूत्र के चतुर्थ अध्याय में मोक्ष सम्बन्धी उल्लेख है। इसमे मोक्ष के स्वरूप, जीवन्मुक्ति एव क्रम मुक्ति के वर्णन के साथ–साथ ब्रह्म लोक के दिव्य भोगो का भी उल्लेख है। विभिन्न साधनो के फलस्वरूप प्राप्त होने वाली मुक्ति और उसके आनन्द का उल्लेख करने के कारण इस चतुर्थ अध्याय को – **फलोध्याय** – अभिहित किया जाता है।

अन्य सूत्रो की तरह ब्रह्मसूत्र भी अत्यन्त संक्षिप्त और दुर्बोध है। फलस्वरूप इनके बारे में अनेक शकाये प्रस्फुटित हुई है। इन शंकाओं के निराकरण हेतु अनेक भाष्यकारो ने अपने–अपने मत व्यक्त किये। प्रत्येक भाष्यकार ने अपने भाष्य की पुष्टि वेद और उपनिषद् मे वर्णित विचारो से की है। ऐसे मे जितने भाष्यकार हुये उतने ही वेदान्त दर्शन के सम्प्रदाय भी विकसित हुये है। फलत शकर, रामानुज, मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य इत्यादि वेदान्त दर्शन के विभिन्न सम्प्रदाय के प्रवर्तक बन गये। इस प्रकार वेदान्त दर्शन के अनेक सम्प्रदाय विकसित हुये, जिनमे निम्नलिखित मुख्य है :–

1 अद्वैतवाद

2. विशिष्टाद्वैतवाद

3 द्वैतवाद

4 द्वैताद्वैतवाद

अद्वैतवाद् के प्रवर्तक शकर है। विशिष्टाद्वैतवाद के प्रवर्तक रामानुज है। द्वैतवाद के प्रवर्तक मध्वाचार्य हैं और द्वैताद्वैतवाद के प्रवर्तक निम्बार्काचार्य है। इस प्रकार वेद की दार्शनिक विचारधाराये – ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र से विभिन्न रूपो मे प्रस्फुटित होती हुई शकर के दर्शन मे अद्वैतवाद के रूप मे फलित हुई।

मेरे शोध के प्रतिपाद्य विषय शकर के सत् के सम्बन्ध मे प्रसंगतः अब विस्तृत व्याख्या करना यद्यपि समीचीन है फिर भी भारतीय दर्शनशास्त्र के सर्वस्व एव उपनिषद् रूपी गाय के अमृत तुल्य दुग्ध – गीता – की भी दार्शनिक विचारधाराओ पर संक्षिप्त रूप में प्रकाश डालना अत्यन्त वांछनीय है। जिससे शकर के सत् (ब्रह्म) आदि एव गीता के सत् (ब्रह्म) आदि के दार्शनिक विचारो के तुलनात्मक अध्ययन का सुअवसर उपलब्ध हो सके। अस्तु अब सक्षेप मे गीता की भी दार्शनिक विचारधाराओ पर निम्न प्रकारेण विवेचना किया जाना समीचीन है।

गीता के दार्शनिक विचार :–

वेद व्यास द्वारा रचित गीता उपनिषद् का सार है। वाणी द्वारा उसके महात्म्य का वर्णन सम्भव नहीं है। सम्पूर्ण वेद उपनिषद्, ब्राह्मण,

आरण्यक एव ब्रह्म सूत्र आदि सार रूप मे इसमें सग्रहीत है। यह अत्यन्त ही लोकहितकारी है। मानव के लिए इसका सबसे बडा शुभ–संदेश निष्काम कर्म है जिसके अनुसार अनासक्त रूप से ईश्वर में अपने को अर्पित कर कर्म करना ही श्रेयष्कर बताया गया है।[1] एव योगस्थ कर्म[2] करते हुये अनासक्ति रूप से लाभ, अलाभ, जय, पराजय मे समत्व भाव से कर्म करना (निष्काम कर्म) ही गीता का मानव के लिये शुभ संदेश है। इस निष्काम कर्म की विचार धारा के क्रम मे गीता के अन्तर्गत ब्रह्म, जीव, जगत् आदि पर भी विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है। जहॉ तक शकर के सत् सम्बन्धी विचारो के अध्ययन मे गीता के दार्शनिक विचारो की उपादेयता की बात है, हम देखते है कि गीता का दर्शन भी शङ्कर के सत् सम्बन्धी विचारों को पूर्णतया प्रभावित किया है। इसकी पुष्टि शकर द्वारा गीता पर किये गये उनके भाष्य से होती है। अस्तु आवश्यक होगा कि प्रसंगानुसार गीता की ब्रह्म, जीव, जगत् आदि सम्बन्धी दार्शनिक विचारधाराओं पर विहंगम दृष्टिपात किया जाय। जो निम्नवत् है –

---

[1] कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।
– गीता – 2/47

[2] योगस्थ· कुरू कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्व योग उच्यते।। श्रीमद्भगवद्गीता–2/48

गीता का ब्रह्म, जीव, जगत् आदि सम्बन्धी विचार :-

गीता में ब्रह्म को अक्षर और अविनाशी कहा गया है। वह ही आदि देव और पुरातन पुरूष है। वह परमधाम और अनन्त रूप है।[1] वह अविनाशी तथा अव्यय है।[2] ब्रह्म परम् धाम, परम पवित्र, शाश्वत्, दिव्य आदिदेव और सर्वव्यापी है।[3] गीता का ब्रह्म ही इस जगत् का उद्भव और प्रलय है।[4] इसी प्रकार गीता के अन्तर्गत इसकी 18 अध्यायो में ब्रह्म को निर्गुण हो कर भी इस जगत का उद्भव और प्रलय का कारण बताया गया है। गीता का ब्रह्म जगत् मे स्थिति समस्त वस्तुओ का तेज है।[5] पूरा विश्व

---

[1] त्वमादिदेव पुरूष. पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य पर निधानम्।
वेत्तासि वेद्य च परं च धाम त्वया तत
विश्वमनन्तरूप।।
श्रीमद्भगवद्गीता – 11/38

[2] अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिद ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति।।
– श्रीमद्भगवद् गीता – 2/17

[3] पर ब्रह्म पर धाम पवित्रं परमं भवान् ।
पुरूष शाश्वत दिव्यमादिदेवमजं विभुम्।।
श्रीमद्भगवद् गीता – 10/12

[4] एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अह कृत्स्नस्य जगत प्रभव प्रलयस्तथा।।
श्रीमद्भगवद् गीता – 7/6

[5] यद्यद्विभूतिमत्सत्त्व श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्व मम तेजोऽशसंभवम्।।
श्रीमद्भगवद्गीता – 10/41

उसी मे व्याप्त है। गीता के ग्यारहवे अध्याय मे ब्रह्म का जो रूप बताया गया है, वह मानव हृदय को अह्लादित करने वाला है। इसमें ब्रह्म को जानने योग्य परम अक्षर के साथ–साथ अनादि धर्म के रक्षक और अविनाशी सनातन पुरूष के रूप मे अभिहित किया गया है।[1] गीता का यह ब्रह्म परम दयालु और भक्तो के लिए सब कुछ उपलब्ध कराने वाला है। गीता के ग्यारहवे अध्याय मे पर ब्रह्म परमात्मा की उपलब्धि वेद एव यज्ञादि कर्मो तथा तप आदि से असम्भव बताया गया है। अपितु इसकी प्राप्ति अर्जुन जैसे सहज भक्ति एवं श्रद्धावान के लिये ही सम्भव बताया गया है।[2] गीता मे जीव, जगत और ब्रह्म को ईश्वर प्रणीत और उसी से व्यक्त हुआ माना गया है। भौतिक शरीर को परिवर्तनशील और नाशवान माना गया है। इस अनित्य देह मे आत्मा, जीवात्मा से परे ब्रह्म का रूप है। इस प्रकार आत्मा का मरना या जन्म लेना – ऐसा सोचना अज्ञान जन्य है। यह आत्मा

---

[1] त्वमक्षर परम वेदितव्य त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमत्वयय शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्व पुरूषो मतो मे।।
श्रीमद्भगवद्गीता – 11/18

[2] न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरूग्रैः।
एवरूप शक्य अह नृलोके द्रष्टु त्वदन्येन कुरू प्रवीर।।
श्रीमद्भगवद्गीता 11/48

अविनाशी एव अक्षर है।[1] जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रो को छोडकर नये वस्त्रो को धारण करता है, उसी प्रकार यह भौतिक शरीर नाशवान है और इसके अन्तर्गत स्थित आत्मा (परमात्मा) अजर अमर है और यह इस नाशवान शरीर को छोडकर अन्य नवीन शरीर मे प्रवेश करता है।[2] अस्तु आत्मा अछेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य और अशोष्य है।[3] इस प्रकार गीता मे ब्रह्म ही एकमात्र सत् है और सारा जड चेतन जगत् उसी से उद्भूत हुआ उसी मे स्थित है। इस बात का उल्लेख ब्रह्म के रूप मे श्रीकृष्ण ने गीता की दशवी अध्याय मे किया है। उनका कथन है कि जो–जो भी ऐश्वर्य युक्त, कान्ति युक्त और शक्ति युक्त वस्तु है, उस–उस को तू (अर्जुन) मेरे (ब्रह्म के) तेज के अश की अभिव्यक्ति जान।[4] इसके आगे उन्होने यह भी कहा है कि हे

---

[1] न जायते म्रियते वा कदाचिन्नाय भूत्वाऽभविता वा न भूयः।
अजो नित्य शाश्वतोऽय पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।
श्रीमद्भगवद्गीता – 2/20

[2] वासासि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा –
न्यन्यानि सयाति नवानि देही।।
श्रीमद्भगवद् गीता – 2/22

[3] अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्य सर्वगत स्थाणुरचलोऽय सनातनः ।। श्रीमद्भगवद्गीता – 2/24

[4] यद्यद्विभूतिमत्सत्त्व श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्व मम तेजोऽशसभवम्।।
श्रीमद्भगवद् गीता – 10/41

अर्जुन। तुम्हे बहुत कुछ जानने से क्या प्रयोजन ? तुम इतना ही जान कि मै इस पूरे जगत को अपनी शक्ति के एक अश मात्र से धारण करके स्थित हूँ।[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि गीता (जिसकी मुख्य दार्शनिक विचारधारा निष्काम कर्मयोग है), के अनुसार भी ब्रह्म जीव जगत् की विचारधाराये मुख्य रूप से बहुत कुछ उपनिषदो के समान ही है एवं इन सबके आधार पर शकर ने अपनी दार्शनिक विचारधाराओं को पल्लवित एव पुष्पित किया है। इस प्रकार हम देखते है कि वेद का बहुदेववाद एकेश्वरवाद मे परिणित होता हुआ उपनिषद् की यथोवत्त अपार ज्ञान राशि के रूप मे वर्णित हुआ। जिसे बाद मे वादरायण ने अपने ब्रह्म सूत्र मे सूत्रबद्ध किया और जिन विचारधाराओं का प्रस्फुटन गीता के रूप में सभी उपनिषदो को गाय रूप मे बनाकर कृष्ण रूप ग्वाले के द्वारा अमृत रूपी दुग्ध के रूप मे अर्जुन को बछडा बनाकर, दुहा गया है। जिस गीतामृत का पान युग–युगान्तर तक मानव जाति करती रहेगी। उपर्युक्त प्रस्थानत्रयी मे सामान्य दृष्टि से यत्किचित विसगतियॉ दृष्टिगोचर होती है जिनको शंकर आदि दार्शनिको ने अपने–अपने दार्शनिक विचारधाराओ मे वर्णित किया है।

---

[1] अथवा बहुनैतेन कि ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिद कृत्स्नमेकाशेन स्थितो जगत्।। श्रीमद्भगवद् गीता – 10/42

फलत शकर के अद्वैतवाद रामानुज के विशिष्टाद्वैतवाद, मध्वाचार्य के द्वैतवाद, निम्बार्काचार्य के द्वैताद्वैतवाद एव बल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैतवाद जैसी दार्शनिक विचारधाराओ का प्रतिपादन हुआ।

इस प्रकार शकर के अद्वैतवाद सम्बन्धी दार्शनिक विचारधारा के उद्भव एव विकास पर सक्षिप्त रूप से विचार करने के बाद यह **अपेक्षित है कि पाश्चात्य दार्शनिक स्पिनोजा की दार्शनिक विचारधारा के उद्भव एव विकास पर सक्षिप्त प्रकाश डाला जाय।** अस्तु अब पाश्चात्य दार्शनिकों मे उन दार्शनिको की विचारधाराओ पर सक्षेप में विचार किया जायेगा जो स्पिनोजा की दार्शनिक विचारधाराओ के उद्भव एव विकास को प्रभावित करते है। यद्यपि ब्रूनो एव डेकार्ट ही ऐसे दार्शनिक हैं, जिनकी दार्शनिक विचारधाराये ही मुख्य रूप से स्पिनोजा की दार्शनिक विचारधारा को प्रभावित करने वाली कही जा सकती है किन्तु पाश्चात्य दर्शन के प्राचीन काल से लेकर स्पिनोजा के समय तक के पाश्चात्य दर्शन की एक लम्बी अवधि मे अनेक दार्शनिक पैदा हुए एवं उनके विचार किस प्रकार तक ब्रूनो तक पहुँचे एव ब्रूनो आदि किस प्रकार डेकार्ट को प्रभावित किये एव डेकार्ट के दार्शनिक विचारो ने किस प्रकार स्पिनोजा को प्रभावित किया इन सब पर न्यायत विचार करने की दृष्टि से अनिवार्य होगा कि पाश्चात्य

दर्शन के प्राचीन काल से लेकर स्पिनोजा पर्यन्त पाश्चात्य दर्शन के विकास पर संक्षेपतः विचार किया जाय।

पाश्चात्य दर्शन का शुभारम्भ युनानी दर्शन से होता है। पाश्चात्य दर्शन को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से निम्न प्रकारेण चार काल में विभक्त किया गया है –

(1) प्राचीन काल – छठी शताब्दी ई0पू0 से तीसरी शताब्दी ईसवी तक।

(2) मध्यकाल – इसका प्रसार लगभग चौथी शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी तक मानना चाहिए।

(3) आधुनिक युग – चौदहवी शताब्दी से उन्नीसवी शताब्दी तक इसका कार्यकाल माना जाता है।

(4) समसामयिक युग – यह बीसवीं शताब्दी का दर्शन है।

अब हम इन पर क्रमश सक्षेप मे विचार करेंगे –

(१) प्राचीन काल :–

जहाँ तक प्राचीन कालीन दर्शन की बात है, यह युनानी दर्शन का युग है। इसका उद्भव ग्रीस मे हुआ। ग्रीक दार्शनिकों ने पहले जड़

जगत् पर विचार किया फिर अन्तर्मुखी दृष्टि से चेतन आत्मा की विवेचना की एव बाद मे जड एव चेतन आत्मा का समन्वय तत्व मे किया। पाश्चात्य दर्शन मुख्यतया ग्रीक दर्शन पर आधारित है। पाश्चात्य दर्शन की सभी विचारधाराओ का सूत्रपात ग्रीक दर्शन मे हो गया था। ग्रीक दार्शनिक प्लेटो "पाश्चात्य दर्शन के प्राण बिन्दु है" यदि ऐसा कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी। एक प्रकार से सम्पूर्ण पाश्चात्य दर्शन ग्रीक दार्शनिक प्लेटो के दर्शन पर धारावाहिक टिप्पणी है।

पाश्चात्य युनानी दार्शनिक परम्परा मे – क्रमश थेलीज, एनिक्जीमेण्डर, एनीक्जीमेनीज, पाइथागोरस, हेरेक्लाइट्स, जेनोफेनीज, पारमेनाइडीज, जीनों, मेलिसस, एम्पेडोक्लीज, एनेक्सीगोरस, ल्यूसिपस और डेमाक्रेटस, सोफिस्ट – प्रोटोगोरस और जार्जियस है। ये प्राचीन काल मे सुकरात के पूर्व के दार्शनिक है। इन दार्शनिको मे थेलीज, एनिक्जीमेण्डर एव एनीक्जीमेनोज द्वारा मुख्यत द्रव्य (Matter) के बारे मे विचार किया गया है। थेलीज के अनुसार परमतत्व जल है। जल से ही सृष्टि की उत्पत्ति होती है एव जल मे ही सृष्टि की स्थिति एव प्रलय है। जल बिन्दु रूप मे सबका जनक है। इस प्रकार हम देखते है कि थेलीज के अनुसार जल ही परम तत्व के रूप मे अभिहित है। एनिक्जीमेण्डर के अनुसार परम तत्व असीम (Apeiron or the Boundless) है। चारो भौतिक द्रव्य –

पृथ्वी, जल, अग्नि एव वायु सान्त है। परम तत्व इन चारो महाभूतो से परे इनका जनक होना चाहिए एवं यह यथोक्त असीम है। इनके अतिरिक्त एनीक्जीमेनीज के अनुसार – परम तत्व वायु है। ये तीनो दार्शनिक माइलेसियन मत के अनुयायी है।

माइलेसियन मत के दार्शनिको के द्रव्य विवेचनोपरान्त पाइथागोरस ने स्वरूप (Form) को अपनी दार्शनिक विचारधारा का मुख्य बिन्दु बनाया। इनके अनुसार स्वरूप अतीन्द्रिय, सामान्य एव विज्ञान रूप है। सामंजस्य एव अभेद इसी के कारण होता है। पाइथागोरस के अनुसार संगीत मानसिक दोष दूर करने का साधन माना गया है एव इसी क्रम में दर्शन को इन्होने सर्वोत्तम सगीत कहा है। जिस प्रकार संगीत मे विविध स्वर एकतान के रूप मे मुखरित होते है उसी प्रकार दर्शन में भी सभी सासारिक पदार्थ आपस मे भिन्न होते हुए भी एक ही तत्व का राग अलापते हैं। पाइथागोरस के इन विचारों का प्रभाव प्लेटो के विज्ञानवाद पर पडा है। पाइथागोरस भारतीय विचारक महावीर एवं गौतम बुद्ध के समकालीन है एवं इनकी दार्शनिक विचारधाराये भारतीय दार्शनिक विचारधाराओं से बहुत कुछ मिलती है।

द्रव्य एव स्वरूप के दार्शनिक विचारो के पश्चात् ग्रीक दर्शन मे परिणाम (Becoming) एव सत्ता (Being) को दर्शन का मुख्य बिन्दु माना गया है। हेरेक्लाइट्स के अनुसार अग्नि या तेजस्व परम तत्व है। इसी से जल एव पृथ्वी का सृजन होता है। यह अत्यन्त गतिशील होने के साथ ज्वलन्त भी है। अग्नि एव परिणाम (Becoming) दोनो इनके अनुसार एक है। ससार की समस्त वस्तुएँ अनित्य एव क्षणिक है। कोई भी पदार्थ गतिशील या परिणामी नही अपितु गति या परिणाम ही एक मात्र तत्व हैं। विश्व गति है, परिणाम है, धारा है, प्रवाह है। कोई भी व्यक्ति किसी नदी मे दो बार नही स्नान कर सकता क्योकि नदी के जिस पानी में प्रथम स्नान किया वह बह गया और अब दूसरा पानी उसके स्थान पर आ गया। अग्नि की ज्वाला प्रत्येक क्षण बदलती रहती है। यह बौद्ध के क्षणभंगवाद के समान है। इनके अनुसार जल की धारा एव अग्नि की ज्वाला प्रत्येक क्षण बदलती रहती है। अविच्छिन्न प्रवाह एव अटूट धारा तथा निरन्तर परिवर्तन ही जगत का नियम है। अग्नि, जल एव पृथ्वी– यह अवनत मार्ग (Ano or the way down) है तथा पृथ्वी, जल एव अग्नि – यह उन्नत मार्ग (Keto or the way up) है। इस प्रकार हेरेक्लाइट्स के दर्शन में सापेक्षवाद, बुद्धिवाद, विज्ञानवाद, विकासवाद आदि दार्शनिक विचारधारायें किसी न किसी रूप मे उपलब्ध है, जिनका प्रभाव बाद के आने वाले दार्शनिको प्रोटोगोरस, डेकार्ट,

स्पिनोजा, लाइबनित्ज, ह्यूम, हीगेल, जेम्स एवं बर्गसा आदि पर पडा है। हेरेक्लाइट्स का यह कथन कि उनका दर्शन "इने गिने सुयोग्य व्यक्तियों के लिए ही है, क्योंकि गधो को घास चाहिए स्वर्ण नही" इस बात का द्योतक है कि हेरेक्लाइट्स महान दार्शनिक विचारो से ओत–प्रोत हो मानव कल्यणार्थ शुभ दार्शनिक विचारधाराओ को जनहिताय दिये है। इनके अतिरिक्त अन्य कुछ दार्शनिक भी जैसे जेनोफेनीज आदि है जिनके अनुसार ईश्वर को निराकार एव अन्तर्यामी बताया गया है तथा इन सब की विचारधाराये प्रकारान्तर से स्पिनोजा के दर्शन को प्रभावित किये है।

इसके बाद के पार्मेनाइडीज के अनुसार तत्व सत् (Being) है। तत्व शुद्ध सत्ता (Pure Being) है। वह एक, अद्वितीय, नित्य, अपरिणामी एवं कूटस्थ है। इनके अतिरिक्त सुकरात के पूर्व के दार्शनिक जीनो, मेलिसस, एम्पोडाक्लीज, एनेक्जीगोरस, परमाणुवादी ल्युसिपस और डेमॉक्रिटस, सोफिस्ट प्रोटोगोरस एव जार्जियस की भी दार्शनिक विचारधारायें किसी न किसी रूप मे स्पिनोजा की दार्शनिक विचारधाराओ को उपर्युक्त प्रकारेण प्रभावित की है जिनका यहा वर्णन करना समीचीन नही है।

अब इसके बाद सुकरात एव इनके बाद के दार्शनिकों पर भी विषयानुसार संक्षेप मे विचार करना अपेक्षित है। सुकरात एक अत्यधिक

प्रबुद्ध एव विवेकशील थे। वे सत्य एव सदाचार के प्रतीक थे। सुकरात अपनी पवित्र अन्तरात्मा की आवाज को वरीयता देते थे। उनके पूर्व सोफिस्ट पैसा लेकर शिक्षा देते थे किन्तु निर्धन सुकरात एन्थेसवासियों को नि शुल्क नैतिक शिक्षा देते थे। अपनी इस नि स्वार्थ आदर्श सेवा के कारण ही सुकरात एन्थेस के नवयुवको के प्रिय एवं श्रद्धेय शिक्षक बन गये थे। अपने घरेलू जीवन को वे सामाजिक सेवा की अपेक्षा गौण समझते थे। फलत. ग्रीकवासियों के दिल और दिमाग पर उनकी अमिट छाप पड गयी थी। यद्यपि सुकरात को सर्वाधिक बुद्धिमान ग्रीक (The wisest of the Greek) कहा गया है फिर भी सुकरात मे इतनी भद्रता एव विनम्रता थी कि वह अपने को एक अल्पज्ञ के रूप मे व्यक्त करते हुए कहा है कि "मैं केवल एक ही बात जानता हूँ और वह यह है कि मै कुछ नही जानता हूँ।"[1]

सुकरात के युग मे बहुदेववाद का प्रचलन था फिर भी वह एक ईश्वर मे विश्वास करते थे। सुकरात का अपना कोई निजी ग्रन्थ उपलब्ध नही है। उनके जीवन वृतान्त एव विचारो का ज्ञान प्लेटो की रचनाओं द्वारा होता है। उनके विचार बडे ही क्रान्तिकारी थे। राज्य द्रोह और देवताओं की उपेक्षा का दोष लगाकर इन्हे कारागार मे बन्द कर दिया गया था, उन्हे मृत्युदण्ड भी दे दिया गया था। उनके मृत्युदण्ड का हृदय स्पर्शी चित्रण

[1] "Story of Philosophy, will Durant, P 6"

प्लेटो ने किया है। मृत्युदण्ड के समय सुकरात ने कहा है कि – "हे एथेन्सवासियो! मै तुम लोगो का सम्मान करता हूँ। तुम लोगो की आज्ञा मानने की अपेक्षा मै ईश्वरीय आदेशो को स्वीकार करूँगा। सद्गुणी के लिए स्वर्ग मे कोई भय नही है। अब अलग होने का समय आ गया है। हम अपने–अपने मार्ग का अनुसरण करते है। मै मृत्यु के पथ पर और तुम जीवन के पथ पर। कौन सा मार्ग श्रेष्ठ है ? इसे ईश्वर ही जानता है।"

इस प्रकार इस युग के सबसे महान ज्ञानी, पुण्यात्मा, दार्शनिक सुकरात ने जहर का प्याला पीकर अन्तिम सॉस ले लिया। सुकरात ने ग्रीक विचारधारा के सर्वोत्तम युग का सूत्रपात किया जिसे ग्रीक दर्शन का – स्वर्णयुग – कहा जाता है। सुकरात ने सोफिस्टो की दोषपूर्ण युक्तियो का खण्डन किया और ज्ञानमीमासा के क्षेत्र मे नवीन दार्शनिक मापको का शिलान्यास किया। सुकरात की दार्शनिक विचारधारा में निगमनात्मक पद्धति का पुट होने के साथ–साथ सन्देह का भी स्थान है, किन्तु उनका यह सन्देह, सोफिस्टों के संशयवाद से भिन्न है। सोफिस्टो का संशय स्थायी था, इसके विपरीत सुकरात का सन्देह या सशय ज्ञान के निश्चित स्वरूप को निर्धारण करने में सहयोगी है।

सुकरात के अनुसार नैतिक जीवन ही परम शुभ है। उनके दर्शन का मुख्य उद्देश्य नैतिकता के क्षेत्र मे सार्वभौम और वस्तुनिष्ठ मापदण्डो की स्थापना करना है। वे ज्ञान के आचारमूलक पक्ष पर विशेष बल देते थे। उनके अनुसार ज्ञान और आचरण में एकरूपता होनी चाहिए। सुकरात के अनुसार – ज्ञान सद्‌गुण है (Knowledge is virtue)। जीवन का परमलक्ष्य सद्‌गुण है। सद्‌गुणी नैतिक जीवन ही मनुष्य का परम लक्ष्य है। चूँकि सुकरात ज्ञान को ही सद्‌गुण मानता है, इसलिये सद्‌गुणी व्यक्ति ही ज्ञानी हो सकता है। इस प्रकार ज्ञान एव सद्‌गुण परस्पर अभिन्न एव अविभाज्य है। सुकरात के अनुसार अज्ञान सबसे बडा पाप है क्योकि यही मनुष्य को अनुचित कार्य की ओर उन्मुख करता है। अगर मनुष्य को यह ज्ञान हो जाय कि अमुक कार्य अनुचित है तो वह व्यक्ति उस कार्य को नहीं करेगा। सुकरात विभिन्न सद्‌गुणो मे एकरूपता स्थापित कर–करूणा, साहस, न्याय, धैर्य आदि को एक ही सद्‌गुण (विवेक) का पहलू बताया। इन सभी सद्‌गूणो मे विरोध नही अपितु सामंजस्य है। वस्तुत· सद्‌गुणों का ज्ञान शिक्षण द्वारा सम्भव है। किसी व्यक्ति के ज्ञान और आचरण में सामंजस्य होना उसके बहुत कुछ विवेक युक्त होने पर निर्भर है। इस प्रकार सुकरात ने विवेक को सारे सदाचारों की आधार शिला माना है। सुकरात ने प्रत्येक निषेधात्मक ज्ञान का एक स्वीकारात्मक आधार स्वीकारा है। इसकी विवेचना

ही दर्शन का मुख्य लक्ष्य होना चाहिये। असत्य की सम्भावना और अस्तित्व– सत्य की सम्भावना और अस्तित्व को सिद्ध करता है।[1]

सुकरात का यह कथन – "स्वय को जानो" – Know thy self का अर्थ है – अपनी ज्ञान की क्षमता और सीमाओ को समझो। उनके अनुसार केवल विवेकयुक्त मनुष्य ही अपने को जान सकता है। एव इस प्रकार का आत्मज्ञानी ही आनन्दमय जीवन व्यतीत कर सकता है। यहॉ यह प्रश्न उठता है कि क्या सदगुणो के ज्ञानमात्र से कोई व्यक्ति सद्‌गुणी हो सकता है ? क्योकि प्राय देखने मे आता है कि नैतिक सम्प्रत्ययो को जानने वाले लोगो का आचरण भी अनैतिक होता है। औचित्य को जानते हुए भी लोग तदनुसार आचरण नही करतें किन्तु सुकरात के अनुसार – ज्ञान का आचरण से घनिष्ठ सम्बन्ध है। उनके अनुसार "मैं धर्म अथवा सद्‌गुण को जानता हूॅ किन्तु उनके अनुरूप आचरण नही करता हूॅ"– यह सद्‌गुण की गलत अवधारणा पर आधारित है। इसे सूचनात्मक ज्ञान भले ही कहा जाय किन्तु यह विवेकपूर्ण ज्ञान नही है। अस्तु अविवेक के कारण ही जान बूझकर लोग अनुचित आचरण करते है।

---

[1] Problems of Depth Epistemology, p.p 34-43

सुकरात का कोई ग्रन्थ उपलब्ध नही है। उनके दार्शनिक विचारो की जानकारी प्लेटो से ही होती है जिससे स्पष्ट होता है कि उनके दर्शन के दो महत्वपूर्ण और क्रान्तिकारी पहलू है –

1– समस्त ज्ञान सम्प्रत्यात्मक होता है।

2– ज्ञान सद्‌गुण है।

सुकरात का सबसे बडा योगदान ज्ञान और सद्‌गुण के सार्वभौम और वस्तुनिष्ठ प्रतिमानो का प्रतिपादन करना है। सुकरात की इसी दार्शनिक विचारधारा के फलस्वरूप प्लेटो और अरस्तू की दार्शनिक विचारधारा पल्लवित एव पुष्पित हुई है। सुकरात का प्रादुर्भाव न कवेल एन्थेस बल्कि विश्व की दार्शनिक विचारधारा के लिए हुआ है। यह दर्शन के अभिनव और स्वर्णयुग का शुभारम्भ है। प्लेटों का दर्शन सुकरात का ऋणी है। प्लेटों के बाद विकसित सभी दार्शनिक सिद्धान्त प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सुकरात के "ज्ञान सम्प्रत्यात्मक होता है" से प्रभावित रहे हैं। इस प्रकार पाश्चात्य दर्शन के मूलबिन्दु सुकरात पर विचार करने के बाद पाश्चात्य दार्शनिक विचारधारा के क्रम मे अब हम प्लेटों पर दृष्टिपात करेगे।

प्लेटो :–

प्लेटो ग्रीक के सबसे महान एव विश्व के एक महान दार्शनिक है। उनकी प्रतिभा सर्वतोन्मुखी थी। पाश्चात्य दर्शन का कोई भी ऐसा मौलिक सिद्धान्त नही है, जिसका सूत्रपात प्लेटो के दर्शन मे न हुआ हो। प्लेटो ने अपनी महान कृतियॉ संवादो (Dialogues) के रूप मे लिखी हैं। दार्शनिक महत्व के साथ–साथ उनका साहित्यिक दृष्टि से भी विशेष महत्व है। प्लेटो मे ग्रीक दर्शन अपने चरमोत्कर्ष पर पहॅुचा है। इसीलिए उन्हें पूर्ण ग्रीक (The Complete Greek)की उपाधि दी गयी है। माइलेसियन मत का द्रव्य, पाइथागोरस का स्वरूप या सख्या, हेरेक्लाइट्स का परिणाम और सार्वभौम विज्ञान, पार्मेनाइडीज का सत्, जीनों का द्वन्द्वात्मक तर्क, एम्पोडोक्लीज का प्रेम, एनेक्जेगोरस का परम विज्ञान, परमाणुवादियों का भौतिक विज्ञान, प्रोटोगोरस का मानव मानदण्ड एवं साक्रीटीज का विज्ञानवाद इन सब का चरम विकास प्लेटो के दर्शन में देखने को मिलता है। प्लेटो इन सब को अपनी मौलिक बुद्धि के द्वारा समन्वित रूप में स्वीकारा है।

प्लेटो का सबसे अधिक महत्वपूर्ण सिद्धान्त विज्ञानवाद है। यद्यपि विज्ञानवाद मूल रूप में सुकरात की दार्शनिक विचारधारा है किन्तु

उसे विशद्रूप प्लेटो ने ही प्रदान किया है। ऐसे मे विज्ञानवाद की दार्शनिक विचारधारा का रूप देने का श्रेय प्लेटो पर जाता है। प्लेटो की यह विज्ञानवाद सम्बन्धी दार्शनिक विचारधारा परवर्ती पाश्चात्य दार्शनिको को किसी न किसी रूप में प्रभावित की है। जिसका प्रभाव प्रकारान्तर से आगे चलकर स्पिनोजा पर भी पडा है। प्लेटो के बाद ग्रीक दार्शनिकों के विकास क्रम मे अरस्तू (Aristotle) का नाम आता है।

अरस्तू (ARISTOTLE)

अरस्तू पाश्चात्य निगमन तर्क के जनक हैं और इसे इनके द्वारा जो रूप दिया गया वह शताब्दियों तक मान्य रहा और आज भी उसका अपना महत्व है। इन्होने प्लेटो के विज्ञानवाद के खण्डन में अपनी सारी शक्ति लगा दी। अरस्तू अपने दशर्न को पूर्ववर्ती दार्शनिकों का पूर्ण समन्वय मानते है। उनके अनुसार प्रत्येक पूर्ववर्ती दार्शनिक तुतलाता हुआ अरस्तू है। अरस्तू के अनुसाार विश्व की प्रत्येक वस्तु मे द्रव्य एवं स्वरूप दोनो हैं इस जगत मे द्रव्य एवं स्वरूप को कभी अलग–अलग नहीं किया जा सकता किन्तु इसका यह अर्थ नही है कि विशुद्ध द्रव्य अथवा विशुद्ध स्वरूप की सत्ता ही नही। विशुद्ध द्रव्य है मूल प्रकृति और विशुद्ध स्वरूप है ईश्वर (Pure form)। अरस्तू ने मनोविज्ञान , प्राणिविज्ञान, भौतिक विज्ञान,

आचार शास्त्र, सौन्दर्यशस्त्र, साहित्य पर भी काफी लिखा है। उनकी प्रतिभा असाधारण एव कार्य अत्यन्त व्यापक है जिसका प्रभाव अनेक प्रकार से परवर्ती दार्शनिकों पर पडा है । मध्ययुग के दार्शनिकों का मुख्य कार्य ही ईसाई धर्म के सिद्धान्तो का अरस्तू के विचारों के साथ समन्वय करना था। इस प्रकार अरस्तू पर सक्षेपत प्रकाश डालने के पश्चात सुकरोत्तर युग की दार्शनिक विचारधाराओं पर विचार शोध ग्रन्थ के विषयानुसार अपेक्षित है।

सुकरोत्तर युग –

सुकरोत्तर युग के प्रमुख दार्शनिको में एपीक्यूरस, जीनों पाइरो तथा प्लोटाइनस आदि हैं। इन दार्शनिकों मे एपीक्यूरस का एपीक्युरियनवाद, जीनो का स्टोइक मत, पाइरो का सन्देहवाद तथा प्लोटाइनस मे प्लेटो के मत का पुनरूद्धार हुआ है। इन दार्शनिको की ये विचारधाराये परवर्ती पाश्चात्य दार्शनिकों के विचारों को किसी न किसी रूप मे प्रभावित किया है। इन पर विशेष चर्चा करना समीचीन न समझकर अब पाश्चात्य दर्शन के मध्य युग पर दृष्टिपात करना शोध विषय की दृष्टि से अपेक्षित है।

(२) पाश्चात्य मध्ययुग दर्शन –

एरिजेना मध्ययुग के प्रथम गणनीय दार्शनिक है। यद्यपि एरिजेना के पूर्व लगभग चौथी शताब्दी ईसवी से ही मध्य युग का प्रारम्भ मान लिया जाता है और यथोक्त समय मे भी अनेक महान दार्शनिक हुए, फिर भी यदि सन्त आगस्टाइन के बाद से लेकर एरिजेना के पूर्व के समय को 'अन्धकार युग' कहा जाय, तो कोई अयथावात न होगा। एरिजेना के बाद फिर लगभग दो शताब्दियो तक अंधकार छाया रहा जिसे सन्त एन्सेल्म ने अपनी ज्ञान ज्योति से दूर किया। इस युग को शास्त्रीय युग भी कहते है। यह मुख्यत ईसाई धर्म का दर्शन है। इस युग के दार्शनिको की विचारधाराओं का भी प्रभाव परवर्ती दार्शनिकों पर पड़ा है। जैसे–सन्त एन्सेल्म का ईश्वर की सिद्धि के लिये दिये गये–सत्तामूलक तर्क को आधुनिक युग के संस्थापक डेकार्ट ने प्रकारान्तर से अपनाया है। इस प्रकार इस युग की विचारधाराओ पर यथोक्त संक्षेपत विचार करने से विदित होता है कि परवर्ती दार्शनिकों पर किसी न किसी रूप में इस युग का प्रभाव पड़ा है। अस्तु संक्षेपत मध्य युग के दर्शन पर विचार करनेके, बाद अब आधुनिक युग के पूर्ववर्ती एवं मध्ययुग के उत्तरवर्ती दार्शनिक जिन्हें "सन्धिकाल " के अन्तर्गत समाहित किया जा सकता है–ऐसे दार्शनिक–कुसा के निकोलस,

ब्रूनो, केम्पानोला, बेकन तथा थामस हॉब्स – की क्रान्तिकारी दार्शनिक विचारधाराओ पर सक्षेपत विचार करना अत्यन्त आवश्यक एवं अनिवार्य है।

निकोलस का दर्शन मध्ययुग और आधुनिक युग के विचारो की सधि है। इनके विचारो का प्रभाव ब्रूनो,स्पिनोजा,लाइबनित्ज, शेलिग एव हीगेल के विचारो मे स्पष्टत प्रतीत होता है। निकोलस के द्वारा प्रतिपादित ज्ञान के चार विविध स्तरों–इन्द्रिय संवेदन, सविकल्प या विश्लेषणात्मक बुद्धि सश्लेषणात्मक प्रज्ञा और निर्विकल्प ज्ञान या अपरोक्षानुभूति–का स्पिनोजा पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा है एवं स्पिनोजा ने अपने दर्शन में इनको विधिवत् अपनाया है। निकोलस अपने उन विचारों को, जो ईसाई धर्म के प्रतिकूल पडते थे, पूर्ण विकसित नहीं कर सके एवं इसके लिए यूरोप को लगभग सवा सौ वर्ष ब्रूनो की प्राप्ति पर्यन्त प्रतीक्षा करनी पडी।

निकोलस के बाद उपलब्ध दार्शनिक ब्रूनो ने अपनी पूर्ववर्ती दार्शनिक विचारधारा मे क्रान्तिकारी परिवर्तन लाया। उन्होंने अपने विचारों को छोड देने की अपेक्षा कारागार मे जीवन यापन एव शरीर को जीवित जलवा लेना अपने लिये श्रेयष्कर समझा। ब्रूनों के इस महान त्याग एवं बलिदान को दर्शन–जगत सदा स्मरण करता रहेगा। ब्रूनों पर पाइथागोरस प्लेटो एव निकोलस का विशेषरूप से प्रभाव पडा है। निकोलस की

अद्वैतवादी एवं विशिष्टाद्वैतवादी विचारधारा को उन्होने और अधिक आगे बढ़ाया। उनकी अद्वैतवादी विचारधरा का विकसित रूप स्पिनोजा के दर्शन मे एव विश्ष्टिाद्वैत विचारधारा का विकसित रूप लाइबनित्ज के दर्शन मे अवलोकित होता है। ब्रूनो के अनुसार यह सम्पूर्ण चिदचिद् रूप विश्व ईश्वर का ही रूप है। ईश्वर और विश्व एक ही है। विश्व ईश्वर के अन्तर्गत एव इसके अतिरिक्त अन्य और कुछ नहीं है। यह ईश्वर ही विश्व,विश्वात्मा एवं परात्पर है। ब्रूनों ने ईश्वर की शरीर इस चिदचिद् रूप ससार को विराट या विश्व (Natura Naturata) का नाम दिया है। इस विश्व या विराट की अन्तर्यामी आत्मा को उन्होंने विश्वात्मा या (Natura Naturans) कहा है। शरीर और आत्मा के सगुण रूपमें प्रतीत होने वाले इस निर्गुण तत्व को उन्होने अचिन्त्य परात्पर तत्व (Ens Absolutum Indeterminatum) कहा है। आगे चलकर स्पिनोजा ने इन तीनो नामों का पूर्णतया प्रयोग कर के अपने विचार को पल्लवित एवं पुष्पित किया है। इसके साथ–साथ ब्रूनों के दर्शन मे स्पिनोजा के सर्वेश्वरवाद का भी पूर्वाभास होता है। इसी प्रकार ब्रूनों की ईश्वर सम्बन्धी विचारधारा के क्षेत्र मे भी स्पिनोजा पूर्णतया प्रभावित है। जहॉ ब्रूनो को ईश्वर भक्त (God loving) कहा जाता है वही स्पिनोजा को ईश्वरोन्मत्त (God intoxicated) अभिहित किया जाता है। इस प्रकार हम देखते है कि स्पिनोजा के मूल सिद्धान्त ब्रूनो से पूर्णतया प्रभावित हैं।

इनके बाद केम्पानोला,बेकन एव हाब्स की दार्शनिक विचारधाराओ का विकास हुआ। जिनमें बेकन को–आगमनात्मक तर्कशास्त्र का जनक कहा जा सकता है। कुछ आलोचको ने तो बेकन को ही आधुनिक युग का जन्म दाता कहा है किन्तु अधिकाश दार्शनिक डेकार्ट को ही आधुनिक दर्शन के जन्मदाता मानने के पक्षधर है। बेकन के दर्शन मे आधुनिक युग की सभी दार्शनिक विशेषताओं का अवलोकन किया जा सकता है। आधुनिक युग की सभी विशेषताये–धर्म के प्रति विद्रोह, दर्शन को धर्म की दासता से मुक्त करना, व्यक्तिवाद, विचार स्वातंत्र्य, भौतिक विज्ञान का प्रभाव, प्रयोगो का महत्व और आगमनात्मक प्रणाली आदि बेकन मे प्रचुर मात्रा मे प्राप्त है किन्तु इनका पूर्ण विकास डेकार्ट मे ही हुआ है। अस्तु डेकार्ट को ही आधुनिक युग का जनक कहा जाता है जिनके विषय में आगे विचार होगाऔर अब शोध विषय की दृष्टि से स्पिनोजा के दार्शनिक युग–आधुनिक युग–पर विचार किया जायेगा।

(३) आधुनिक युग –

आधुनिक युग मे मध्य युगीन धर्म के प्रति विद्रोह का भाव जगा है। फलत दर्शन को धर्म की दासता से मुक्त कराकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रादुर्भाव हुआ है एवं आगमनात्मक पद्धति विकसित हुई है। आधुनिक

युग की दार्शनिक विचारधाराओं मे बुद्धिवाद, अनुभववाद एवं आलोचनावाद प्रमुख रूप से स्वीकार किया गया है। इन विचारधाराओ को अपनाने वाले–डेकार्ट, स्पिनोजा, लाइबनित्ज, लॉक, बर्कले, ह्यूम, काण्ट आदि दार्शनिको की विचारधाराओ ने दर्शन जगत मे मध्ययुगीन दार्शनिकविचारधारा का पटाक्षेप कर आधुनिक युग की दार्शनिक विचारधारा का सृजन किया। अब हम शोध–प्रबन्ध विषय की दृष्टि से स्पिनोजा की विचारधाराओ के उद्भव के आधार बिन्दु डेकार्ट की दार्शनिक विचारधाराओं पर प्रकाश डालेगे।

डेकार्ट –

आधुनिक विचारधारा के जनक डेकार्ट गणित के अत्यन्त प्रेमी थे जिससे उनके दार्शनिक विचार में गणित के समान निर्विवाद, निःसंदेह, निश्चयात्मक, अनिवार्यता एव सार्वभौमिकता की प्रधानता है एवं उनके दर्शन की सुदृढ नीव इन पर ही आधारित है। इसी कारण इन्हें दार्शनिक जगत् का जनक कहा है। यद्यपि उनके बहुत से सिद्धान्त अमान्य हो चुके किन्तु उनकी दार्शनिक पद्धति आज भी मान्य है। डेकार्ट का महत्व उनकी दार्शनिक पद्धति और उसके मौलिक सिद्धान्तो के कारण है न कि उनके दार्शनिक मत के कारण।

डेकार्ट का दर्शन उनकी सन्देहात्मक पद्धति से प्रारम्भ होता है। उनके द्वारा इन्द्रिय ज्ञान पर सन्देह करते हुए इस सन्देह के मूल बिन्दु आत्मा के अस्तित्वको स्वीकार किया गया है। इस प्रकार मै सन्देह करता हूॅ या मै सोचता हूॅ इसलिए मेरी सत्ता अनिवार्य है–" Cogito Ergo Sum " (I think therefore I am.) आत्मा की सत्ता का निराकरणनही किया जा सकता। इस आत्मा (चित्) की सत्ता को स्वीकारने के बाद इसके समान ही सदेहातीत आत्मा के ज्ञेय स्वरूप अचित् तत्व की भी सत्ता अनिवार्य एवं अबाधित है। इस अचित् की सत्ता स्वीकारते ही इसके स्रष्टा एवं नियन्ता ईश्वर की भी सत्ता सिद्ध होती है। इस प्रकार डेकार्ट सन्देह के द्वारा ही निश्चयात्मक ज्ञान पर पहुॅचे एवं चित्, अचित् तथा ईश्वर रूपी द्रव्य या तत्व त्रय की प्रतिष्ठा किये। इन तीनों को ही इन्होंने द्रव्य के रूप में स्वीकार किया।

डेकार्ट ज्ञाता के रूप में चित् रूप आत्मा या जीव की सत्ता सिद्ध करते है। चित्रूप आत्मा की सिद्धि होते ही अचित् की भी सिद्धि हो जाती है। चित् अचित् का अनुभव करने हेतु है। चिदात्मा ज्ञाता, कर्ता एवं भोक्ता है। ऐसी चिदात्मा हेतु अनिवार्य रूप से ज्ञेय कार्य और भोग्य की अपेक्षा है तथा इस ज्ञेय, कार्य और भोग्य रूप मे यह जड जगत ही है। चूॅकि यह जड जगत ईश्वर रचित है अस्तु यह भ्रम जनित भी नही है।

चित्–अचित् दोनो की सत्ता सिद्ध करने के पश्चात इसके नियन्ता और सृष्टिकर्ता रूप ईश्वर की भी सत्ता सिद्ध हो जाती है। ईश्वर की सत्ता सिद्ध करने हेतु डेकार्ट ने निगमनात्मक तर्क, सत्तामूलक अनुभूति का तर्क, कार्यकारण भाव मूलक तर्क एवं निमित्त कारण मूलक तर्कों का सहारा लिया है।

मुझे अपनी आत्मा की जिस प्रकार निर्विकल्प अनुभूति होती है, उसी प्रकार ईश्वर की भी सुस्पष्ट अनुभूति हो रही है। अस्तु ईश्वर भी आत्मा के समान सत्य अस्तित्व वाला है। इस प्रकार निगमनात्मक तर्क द्वारा ईश्वर की सत्ता सिद्ध है।

हम अनुभव करते हैं कि ईश्वर की सत्ता है और वह पूर्ण है। यदि वह पूर्ण है तो उसकी सत्ता भी अनिवार्य है। बिना सत्ता के ईश्वर की पूर्णता वदतोव्याघात है। अस्तु ईश्वर के विषय में विचार मात्र से ही उनकी सत्ता सिद्ध है। यह डेकार्ट का ईश्वर की सिद्धि हेतु सत्ता मूलक अनुभूति का तर्क है।

मेरी बुद्धि मे ईश्वर के होने का विचार उत्पन्न होता है। इस विचार का कारण भी ईश्वर के समान ही पूर्ण एवं महान होना चाहिए एवं

यह कारण ईश्वर ही हो सकता है अन्य नहीं। अस्तु इस प्रकार कार्य–कारण मूलक तर्क द्वारा डेकार्ट ने ईश्वर की सत्ता सिद्ध की है।

इसके अतिरिक्त ईश्वर की सत्ता सिद्ध हेतु डेकार्ट ने निमित्त कारण मूलक तर्क का सहारा लिया है। यह तर्क कार्य–कारण भाव–मूलक तर्क का ही रूपान्तर है। अन्तर इतना ही है कि कार्य–कारण भाव मूलक तर्क मे बुद्धि मे उत्पन्न ईश्वर की सत्ता विषयक विचार का कारण ईश्वर को ही मानकर उसकी सत्ता सिद्ध की गयी है, जबकि निमित्तकारण मूलक तर्क मे ईश्वर को इस सम्पूर्ण सृष्टि का निमित्त कारण मानकर उसकी सत्ता सिद्ध की गयी है।

इस प्रकार संक्षेप में डेकार्ट के चित् अचित् एवं ईश्वर की सत्ता सिद्ध करने सम्बंधी विचारों पर संक्षेप में दृष्टिपात करने पर विदित होता है कि डेकार्ट का ईश्वर आदि की सत्ता विषयक तर्क अन्योन्याश्रित है एवं इन पर अनेक शंकायें हुई हैं।

डेकार्ट ने पदार्थ के निम्न तीन विभाजन किया है:–

१–द्रव्य–ईश्वर, चित्(जीव),अचित् (जड़ जगत)

२–गुण

३–पर्याय

डेकार्ट का द्रव्य वह है जिसकी अपनी स्वतत्रत सत्ता है एवं जिसके ज्ञान के लिए अन्य की अपेक्षा नहीं होती है। इस प्रकार द्रव्य की परिभाषा मानने के कारण डेकार्ट को उक्त तीनो द्रव्यों को निरपेक्ष या पर द्रव्य एव सापेक्ष या अपर द्रव्य के रूप मे विभाजित करना पड़ा।ईश्वर ही एकमात्र स्वतंत्र एवं निरपेक्ष द्रव्य है। चित् एव अचित् दोनों सापेक्ष द्रव्य हैं क्योकि ये दोनों अपने अस्तित्व के लिए ईश्वर की अपेक्षा रखते हैं। इन्हें डेकार्ट ने द्रव्य इसलिए माना क्योंकि ये दोनो परस्पर सापेक्ष न होकर केवल ईश्वर सापेक्ष है। चित् और अचित् दोनो को इन्होंने परस्पर स्वतन्त्र एव विरूद्ध माना है। डेकार्ट का द्रव्य सम्बन्धी यथोक्त विचार ही उन्हें क्रिया--प्रतिक्रिया के दलदल में बुरी तरह फँसा दिया। फलतः उनका दर्शन बुद्धिवाद, ईश्वरवाद रूढिवाद एवं द्वैतवाद के रूप में विकसित होकर अनेक आलोचनाओं का विषय बना।

इस प्रकार द्रव्य पर संक्षेपतः विचार करने के पश्चात् डेकार्ट के गुण एवं पर्याय पर सक्षेप में विचार करना अनिवार्य है। प्रत्येक द्रव्य के गुण एव पर्याय होते हैं। ईश्वर के अनन्त गुण एवं अनन्त पर्याय हैं। चित् का मूल गुण चैतन्य है एव अचित् का मूल गुण विस्तार है। चित् के गुण चैतन्य के पर्याय बुद्धि और संकल्प हैं। अचित् के गुण विस्तार के पर्याय गति तथा स्थिति है। चित् एवंअचित् को परस्पर विलक्षण मानने के कारण डेकार्ट

द्वैतवाद की बहुत बडी कठिनाई मे पड. गये। इस द्वैतवाद की समस्या के समाधान हेतु उन्होने ईश्वर की शरण ली किन्तु ईश्वर द्वारा भी द्वैतवाद की इस समस्या का निराकरण नही हो सका। पाश्चात्य एव पौरस्त्य सभी द्वैतवाद में यह दोष आता है एव कोई भी द्वैतवाद इसका उचित समाधान नही दे सका है। जैन का जीव–अजीव, साख्य का पुरूष–प्रकृति, रामानुज का चित्–अचित् सभी इस दोष से युक्त है। इसका एक ही समाधान है कि दोनो को परस्पर विरोधी द्रव्य न मानकर ईश्वर का आभास मात्र माना जाय किन्तु द्वैतवादियो को यह स्वीकार नहीं है। फलतः द्वैतवादियों ने अपने–अपने ढंग से इस द्वैतवाद की समस्या का हल दिया है। डेकार्ट के अनुसार चित्–अचित् में परस्पर क्रिया प्रतिक्रिया का सम्बन्ध है। एक की क्रिया से दूसरे में प्रतिक्रिया होती है। ऐसा क्यों ? इसका कोई समुचित उत्तर डेकार्ट के पास नहीं है। इसके अतिरिक्त इनके सम्बन्ध में डेकार्ट ने एक और विचार दिया है। उनके अनुसार इस शरीर की एक विशेष ग्रन्थि–"पाइनियल ग्रन्थि" (Pineal Gland) है। यह ग्रन्थि ही जीव और शरीर दोनो की मिलनशय्या है किन्तु इसके द्वारा भी द्वैतवाद की समस्या का अन्तिम हल डेकार्ट नहीं दे सके।

संक्षेपतः यह डेकार्ट की दार्शनिक विचारधारा का परिचय है। डेकार्ट के दर्शन पर विचारोपरान्त यह स्पष्ट है कि उनका महत्व मात्र

उनकी सन्देह पद्धति एव ज्ञाता के अनिवार्य अस्तित्व—इन दो बातों के कारण है। यद्यपि इन दोनों की नीव पर डेकार्ट ने अपने दर्शन का जो महल खडा किया वह ढह चुका है फिर भी इसकी नीव अब भी वैसी ही है एवं इस पर ही अनेक दार्शनिको की दार्शनिक विचारो का सृजन हुआ और होता रहेगा।

डेकार्ट की इन विचारधाराओं का स्पिनोजा पर बडा ही प्रभाव पडा है। स्पिनोजा का दर्शन एक प्रकार से डेकार्ट की दार्शनिक विचारधाराओं का सशोधित सुव्यवस्थित एवं बृहद् रूप कहा जाय तो ऐसा कहना अयथाव त न होगा। स्पिनोजा ने डेकार्ट के समान दर्शन की पद्धति सन्देह को साधन मानकर चलना स्वीकारा। दर्शन सत्य की खोज है तथा सत्य के स्वतः सिद्ध और प्रमाणजन्य दो रूप हैं, इसको भी डेकार्ट के समान ही माना। ज्ञाता की स्वत सिद्धता और स्वप्रकाशता की अनिवार्यता भी डेकार्ट के समान पूर्णतया स्पिनोजा में परिलक्षित हुई। इस प्रकार हम देखते है कि स्पिनोज ने डेकार्ट की कुछ बातो को प्रायः मूलतः स्वीकारा । इसके साथ ही साथ स्पिनोजा ने डेकार्ट के दर्शन की कुछ बातों को सशोधित एवं परिमार्जित करते हुए अपने ढग से अभिव्यक्त किया है। पदार्थ को डेकार्ट के समान द्रव्य, गुण एवं पर्याय में विभक्त करते हुए भी स्पिनोजा ने मात्र द्रव्य की ही स्वतन्त्र सत्ता एव निरपेक्षता का प्रतिपादन किया। यह द्रव्य ही उनका "ईश्वर" है। यही सत्—निर्विकल्प एवं निगुर्ण है तथा गुण एवं पर्याय को स्पिनोजा ने

ईश्वराश्रित बताकर उनकी स्वतन्त्र सत्ता को अस्वीकारा है। इसी प्रकार स्पिनोजा ने डेकार्ट के द्वैतवाद को सवॉरकरके अद्वैतवाद मे परिवर्तित कर दिया। डेकार्ट के ईश्वर वाद को इन्होनें सर्वेश्वरवाद मे परिवर्तित कर दिया। डेकार्ट के क्रिया–प्रतिक्रियावाद को स्पिनोजा ने समान्तरवाद मे परिणित कर दिया। इस प्रकार ग्रीक युग से लेकर ब्रूनो के समय तक पाश्चात्य दर्शन विभिन्न दार्शनिको के विचारों के–आरोहावरोह के परिणाम स्वरूप समन्वित रूप में आधुनिक युग के दर्शन के रूप मे प्रस्फुटित हुआ जिसको डेकार्ट ने अपनी दार्शनिक विचारधारा से बहुत कुछ सवॉर एवं सजाकर नया रूप दिया किन्तु इनकी दार्शनिक विचारधारा भी यथोक्त अनेक कमियो एव विवादों का विषय बनी जिसे बहुत कुछ स्पिनोजा ने सशोधित एव परिमार्जित किया। इस प्रकार स्पिनोजा तक पहुॅचकर पाश्चात्य दार्शनिक विचारधारा बहुत कुछ वैज्ञानिक एवं तर्कपूर्ण रूप लेकर दार्शनिको के लिए परिमार्जित एव अनेक विवादो से रहित होकर अद्वैत वाद के रूप में प्राप्त हुई। अब स्पिनोजा के दार्शनिक विचारधाराओं के उद्‌भव एवं विकास के ऊपर सक्षेपत. उपर्युक्त प्रकारेण विचार करने के पश्चात् शोध विषय के अगले अध्याय पर विचार करना समीचीन होगा।

अध्याय–2

शाङ्कर वेदान्त में सत् का स्वरूप –

शाङ्कर वेदान्त मे वर्णित सत् का स्वरूप वेदोपनिषद की मूल विचार धारा का सारतत्व है। शंकर के अनुसार परमसत् ब्रह्म है। ब्रह्म की ही पारमार्थिक सत्ता है। एकमात्र ब्रह्म ही पारमार्थिक एवं अद्वितीय सत् है। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी परमार्थतः सत् नहीं है। जीव एवं जगत् भ्रम मात्र है। यद्यपि अद्वैत का सिद्धान्त अनादि है एवं मानव को सत्यं, शिवं तथा सुन्दरम् का उपदेश देने वाले वेद एवं उपनिषद् भी अन्तत. अद्वैत का ही गुणगान करते हैं फिर भी अद्वैत की सैद्धान्तिक स्थापना का श्रेय शंकर को ही है। यो तो माण्डूक्योपनिषद् एवं उस पर निबद्धित गौडपादीय कारिकाओ को ही अद्वैत सिद्धान्त का प्रथम निबन्ध कहा जा सकता है फिर भी अद्वैत को दार्शनिक सिद्धान्त का जो रूप मिला है उसका श्रेय आचार्य शंकर को ही है। गौडपादीय कारिकाये शंकर के अद्वैत सिद्धान्त प्रेमियों के लिए परमादरणीय है। ये गौडपादीय कारिकाएँ बडी ही मर्मस्पर्शी एवं रहस्यपूर्ण है तथा ये ही अद्वैत सिद्धान्त की आधारशिला हैं।

अद्वैत शब्द का शाब्दिक अर्थ है–द्वैत का अभाव। इस प्रकार एकमात्र ब्रह्म ही सत् है एवं द्वैत भ्रम या माया है। शकर जगत को माया बताकर सृष्टि के नानात्व को निराद्रित किया है।अद्वैत वेदान्त के अनुसार ब्रह्म निराकार, निर्लिप्त, सर्वगत, नित्य तृप्त एवं निर्लेप है।[1] शकर के अनुसार उपनिषदो मे आत्मा को अन्नमय प्राणमय, मनोमय एव विज्ञानमय बताते हुये विज्ञानमय आत्मा से भिन्न आनन्दमय आत्मा को ही ब्रह्म बताया गया है। यहॉ पर ब्रह्म के नानात्व को बताने का अभिपाय यह है कि ब्रह्म अद्वितीय हो करके भी जिस जिस रूप में स्मरण किया जाता है उसी उसी रूप मे प्राप्त होता है। इसका यह कथमपि अभिप्राय नही है कि उसकी अद्वितीयता क्षीण भाव को प्राप्त होती है। वस्तुतः वह अनेक रूप में भासित होता हुआ भी अन्ततः पूर्ण आनन्दमय अद्वैत ही है।[2] ऐसा ज्ञान अज्ञानता के नष्ट होने पर होता है।

---

[1] नित्यः सर्वज्ञः सर्वगतो नित्यतृप्तो नित्यशुद्धबुद्ध
मुक्त स्वभावो विज्ञानमानन्दं ब्रह्म।
—मुण्डक 3/2/9

[2] सर्वदा समैकरसम् अद्वैतम् अविक्रियम् अजम्
अजरम् अमरम् अमृतम् अभयम् आत्मतत्व
ब्रह्मैव स्म—इत्येष सर्व वेदान्तनिश्चितोऽर्थ इत्येवं प्रति पद्यामहे।
—बृहदा0 4/4/6
शांकर भाष्य

जीव एव आत्मा का द्वैत भ्रम है इसीलिए नानात्व की निन्दा की गयी है। नाम रूपात्मक जगत् भ्रम मात्र है। अज्ञानता के कारण उसकी सत्ता है।[1] शकर नानात्व की हर प्रकार से अवहेलना करते है। [2]नानात्व की असत्यता एव अद्वैत की अनुभूति ही शकर के अनुसार जीवन का पारमार्थिक लक्ष्य है।[3]

शंकर के अनुसार सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म ही है। जब तक भ्रम की सत्ता है तब तक ही व्यावहारिकजगत् का अस्तित्व है। माया के कारण ही पारमार्थिक सत् भेद युक्त प्रतीत होता है। पारमार्थतः बह्म सावयव नहीं अपितु निरवयव है। यदि इसमें भेद माना जायेगा तो उसे अज, अद्वय एवं अमृत नहीं कहा जा सकेगा। परन्तु ऐसा न स्वीकारना अप्रमाणिक एवं श्रुति विरूद्ध होगा। अज और अद्वितीय आत्म तत्व माया से ही भेद को प्राप्त

---

1 यच्च सर्वप्राणि साधारणं स्वाभाविकं शास्त्रबहिष्कृतेः कुतार्किकैर्विरचितं नानात्व दर्शनं निन्द्यते

—शांकर0 माण्डक्यो0 3/13

2 कोऽसौ? य इह नानेव पश्यति। अविद्याध्यारोपणव्यतिरेकेण नास्ति परमार्थ तो—द्वैतमित्यर्थ.।

शाकर भाष्य बृ0उ0—4/4/19

3 मृत्योः स मृत्युमापोन्नति य इह नानेव पश्यति।

कठोपनिषद—2/10

होताहै न कि पारमार्थत। अस्तु शकर के अनुसार द्वैत को स्वीकारना न्याय सगत नही है।[1]

ब्रह्म पारमार्थिक एव शाश्वत है। वह अज है। वह निद्रारहित है। वह स्वप्न शून्य है। वह नित्य प्रकाशवान है। उसमे किसी प्रकार का कर्त्तव्य नही है। उसका जीवात्मा आत्मा आदि के रूप मे उत्पन्न होना पारमार्थिक नही अपितु रज्जु मे सर्प की प्रतीति के समान ही है।[2] श्रुतियों एव स्मृतियो मे जगह–जगह पर द्वैत का निराकरण[3] एव अद्वैत की स्थापना ही है।[4] माण्डूक्योपनिषद् के अद्वैत प्रकरण से भी इसी की पुष्टि होती है। जिसमे ब्रह्म जन्म-रहित,निद्रा–रहित, स्वप्न–शून्य, नामरूप से रहित, नित्य प्रकाशस्वरूप और सर्वज्ञ है।[5]

---

[1] न भक्त्यमृतं मर्त्य न मर्त्यममृतं तथा
प्रकृतेरन्यथाभावो न कथंचिद भविष्यति।
माण्डूक्य0 कारिका 3/21

[2] तस्मादेवाकाशाद्घटादय. सघाता यथोत्पयन्त–
एवमाकाशस्थानीयात्परमात्मन पृथिव्यादिभूतसघाता
आध्यात्मिकाश्च कार्यकरणलक्षणा रज्जुसर्पाद् विकल्पिता जायन्ते।
माण्डू० गौड० का० शाकरभाष्य 3/3

[3] नेह नानास्ति किंचन। क०उ० 2/1/11

[4] एकमेवाद्वितीय छान्दोग्य० 6/2/1

[5] अजमनिद्रमस्वप्नमनामकमरूपकम्।
सकृदविभातं सर्वज्ञं नोपचारः कथचन।। माण्डूक्यो0 गौ0 कारिका 3/36

शकर के अनुसार द्वैत दु:खमय है। अतएव मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह धीरे–धीरे द्वैत से अपने मन को दूर करे। प्रश्न उठता है कि इस प्रकार द्वैत से मन को हटाने का क्या उपाय है? इस सम्बध मे शंकर का कथन है कि नित्यप्रति द्वैत को पारमार्थिक न मानता हुआ चित्त को काम जनित मार्गों से हटाने तथा समस्त वस्तुओं को अजन्मा स्वरूप स्मरण करता हुआ देखे। ऐसा करने से जात पदार्थ नही दीखता।[1]

इस प्रकार शकर के अनुसार यह सृष्टि परमार्थ की प्राप्ति का उपाय है। इसकी पारमार्थिक सत्ता नहीं है।[2] शकर का कथन है कि पारमार्थिक सत् से किसी प्रकार की उत्पत्ति नही होती है, न इसका कोई कारण ही है।[3] ब्रह्म अपनी माया द्वारा नामरूपात्मक जगत को प्रदर्शित करता है। जिस प्रकार जादूगर आकाश को पल्लवित-पुष्पित हुआ दिखाता है, उसी प्रकार ब्रह्मभी नामरूपात्मक जगत का अवलोकर कराता है किन्तु

---

[1] सर्वं द्वैतमविद्याविजृम्भित दु खमेवेत्यनुस्मृत्य कामभोगात्काममनिमित्तो भोग इच्छाविषयस्तस्माद्विप्रसृत मना निवर्तयेद्वैराग्यभावनयेत्यर्थः। माण्डू0गौ0 कारिका शाकरभाष्य 3/43

[2] सर्वोप्यय मनोभिग्रहादिर्मृल्लोहादिवत्सृष्टिभ्यासनायोगपरमार्थस्वरूप प्रतिपत्युपायत्वेन न परमार्थसत्येति। माण्डू0गौ0का0 शांकर0 3/47/48

[3] ब्रह्मण्यणुमानमपि किंचिन्न जायत इति। माण्डू0गौ0का0शांकर0 3/48

जिस प्रकार जादूगर की कला को जानने वाला उसकी जादू की वस्तुओ से भ्रमित नही होता उसी प्रकार ज्ञानी पुरूष भी ब्रह्म की माया से भ्रमित नहीं होता। जिस प्रकार स्वप्न के पदार्थ दुकान, बाजार एव गृहादि देखते ही देखते अकस्मात् अभाव को प्राप्त हो जाते है; उसी प्रकार ब्रह्म का ज्ञान होते ही ससार का अभाव हो जाता है। अतएव शकर के अनुसार अज्ञान पर्यन्त ही द्वैत का भाव है।[1]

विश्व के जड चेतन समस्त पदार्थों की सत्ता अज्ञान पर्यन्त ही है। शकर के अनुसार ये सब भ्रम मात्र ही हैं किन्तु जब व्यावहारिक स्तर पर इनकी प्रतीति सत् जैसी होती है तो इसके कारण का भी प्रश्न उठता है। शकर इनका उपादान एव निमित्त कारण ब्रह्म को ही मानते हैं। सष्टि कर्ता के रूप में ब्रह्म ईश्वर का रूप धारण करता है और यह ईश्वर ही इस विश्व का शासक एव पालक है। वह सर्व सम्पन्न है। सारे पदार्थ उसी में व्याप्त हैं तथा समस्त पदार्थ उसी के अंश है। ईश्वर से सृजित यह सृष्टि उससे पृथक नही है। जिस प्रकार समुद्र की तरंगे समुद्र से अतिरिक्त नहीं हैं। घटाकाश, महाकाश से पृथक नही है। उसी प्रकार यह जगत ब्रह्मसे विलग

---

[1] यथा च प्रसारित पण्यापण गृह प्रासादस्त्रीपुंजनपद व्यवहाराकोणंमिव गन्धर्वनगर दृश्यमानमेव सकस्माद् अभावताम् गतं दृष्टं यथा च स्वप्नमार्थ द्रष्टे असद्रूप तथा विश्वमिदं द्वैत समस्तमसद्दृष्टम्।
माण्डू०गौ०का०शांकर० 2/31

नहीं है।[1] पूर्ण ब्रह्म से सृजित या अभिव्यक्त व्यावहारिक दृष्टि से यह जगत पूर्ण ही है औरअज्ञान पर्यन्त ही सत्तावान है। अज्ञान नष्ट होने पर पूर्ण ब्रह्मही एकमात्र सत् रहता है। ब्रह्म चित् रूप है। सारा ज्ञान उसी का आश्रय है। जडता का वहॉ पर अस्तित्व नही है। उस चेतन स्वरूप से सारा विश्व प्रकाशित है।[2] सूर्य,चन्द्रमा एवं ग्रह उसी के चेतन प्रकाश से प्रकाशवान है। शकर के ब्रह्म की चेतना साख्य की पुरूष–चेतना से भिन्न है। सांख्य का प्रकृति को जड रूप मे एव चेतन पुरूष को चित्रूप मे स्वीकार करना तथा लगडे एवं अंधे के समान मिलकर एक दूसरे की सहायता से सृष्टि के समस्त कार्यो का सम्पादन करना विरोधपूर्ण है। पुरूष और प्रकृति यदि परस्पर विरोधी हैं तो इनको मिलाने वाला कौन है? जड़ प्रकृति को पुरूष एवं चेतन पुरूष को जड प्रकृति के सम्पर्क में आने का क्या प्रयोजन है? आदि ऐसी विरोधपूर्ण समस्याएँ है जिनका कोई तर्क पूर्ण हल सांख्य के पास नहीं है। सांख्य के विपरीत शकर का ब्रह्म चित् होने के साथ–साथ अन्य सर्वस्व भी है। ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी की सत्ता नहीं है। वह सबको

---

[1] अवगच्छ त्व जानीहि मम् ईश्वरस्य तेजोऽश सभवं तेजस· अश एक देश सभवों यस्य तत् तेजोऽश सभवम् इति अवगच्छ त्वम्। श्रीमद्भगवद्गीता शाकर भाष्य 10/41

[2] द्यावापृथिव्यो इदम् अन्तर हि अन्तरिक्ष व्याप्तं
त्वया एकेन विश्वरूपेण दिशःच सर्वाव्याप्ताः।
श्रीमद्भगवद्गीता शांकरभाष्य 11/20

अभिव्यक्त किये हुए सबसे पृथक भी है। इसीलिए वेदोपनिषद् मे उसे निरवयव,निष्कलक आदि रूप मे वर्णित किया गया है।

शकर का ब्रह्म सत्,चित होने के साथ–साथ आनन्द स्वरूप भी है। तैत्तिरीय उपनिषद् मे ब्रह्म को अन्नमय,प्राणमय,मनोमय,एवं विज्ञानमय बताते हुए विज्ञानमय आत्मा से भिन्न आनन्दमय आत्मा को ही ब्रह्म बताया गया है।[1] यह आनन्दमय आत्मा ही अन्तरात्मा है और यही ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप है। अन्नमय,प्राणमय आदि को ब्रह्मया आत्मा का स्वरूप बतलाने का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक क्रमागत अगला प्रथम से श्रेष्ठ है एव अन्तिम आनन्दमय ही ब्रह्म है।[2]

आनन्दमय आत्मा व्यक्तिगत आत्मा से पृथक नहीं है। अज्ञान युक्त होने के कारण जीवात्माकेअपने को शरीरादि से युक्त देखने के कारणही इसकी स्थिति विचित्र होती है एव ऐसी ही स्थिति में इसे आनन्दमय आत्मा से पृथक बताया गया है। अज्ञान रहित अपनी वास्तविक स्थिति में तो दोनों

---

[1] तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञानमयात् अन्यो अन्तर आत्मानन्दमयः।
तैत्तरी0 उपनिषद् 2/25

[2] प्रतिपत्तिसौकयापेक्षया सर्वान्तर मुख्यमानन्दमयमात्मानमुपदिदेशेति शिलष्टतरम्।
ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 1/1/92

एक ही है।[1] अतएव सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्मही एकमात्र अद्वितीय पारमार्थिक सत्है।

ब्रह्म ही इस जगत् की समस्त चीजों का कारण है। यद्यपि उसे सत्य, ज्ञान एवं अनन्त विशेषणो द्वारा अभिहित किया गया है फिर भी आकाशादि स्थावर जंगम पर्यन्त उसी से सृजित हो उसी मे अवस्थित है। वह ब्रह्म समस्त व्यावहारिक जीवो की सृष्टि करने के पश्चात् भी इनसे कलुषित नही होता। ऐसा उपनिषदो मे भी दर्शाया गया है।[2] इस प्रकार शंकर का ब्रह्म व्यावहारिक जगत् का रचयिता होकर के भी उनमें व्याप्त रहता है और व्याप्त होकर के भी उनसे परे है।[3]

जीवात्मा अज्ञानावच्छिन्न होने के कारण भ्रमवशात् अपने को आत्मा से पृथक देखती है किन्तु श्रवण,मनन, निदिध्यासन आदि से जब उसके अज्ञान का आवरण नष्ट हो जाता है तब यह जीवात्मा आत्मा से

---

[1] परमैश्वरस्त्वविद्याकल्पिताच्छारीरात् कर्तुभोक्तुर्विज्ञानात्माख्यादन्यः। यथा मायाविनश्च खड्गधरात्सूत्रेणाकाशमधिरोहतःस एव मायावी परमार्थ रूपो भूमिष्ठा–न्य. |ब्रह्म सूत्र शांकरभाष्य 1/1/96

[2] कठोपनिषद् 1/2/8

[3] यत्प्रकृतं ब्रह्म सत्यज्ञानानन्तविशेषणौनिर्धारित,
यस्मादाकाशादिक्रमेण स्थावरजगमानि भूतान्यजायन्त,
यच्च भूतानि सृष्ट्वा तान्यनुप्रविश्य गुहायामवस्थितं।
ब्रह्म शांकरभाष्य 1/1/15

तादात्म्य अनुभव करती हुई उससे पृथक नहीं रहती। जीवात्मा को नाना प्रकार के भय होते है किन्तु आत्मा मे विलीनोपरान्त इन सब का शमन हो जाता है। इस प्रकार शकर के मत से जीव एव आत्मा या ब्रह्म का भेद आत्यन्तिक नहीं है।

आत्मा को अन्नमय,प्राणमय आदि शब्दों से अभिहित किया गया है। इस कारण यह शंकाकरना कि ऐसी स्थिति मे आत्मा शरीरान्तर्गत हो जायेगी–उचित नहीं है। आत्मा शरीरान्तर्गत होकर भी सर्वव्यापी है। वास्तव में शरीरी आत्मा मे मनोमयत्वादि गुण सम्भव नहीं हो सकते हैं क्योकि ऐसा मानने से कर्मकर्तृत्व दोष होगा। एक ही व्यक्तिगत आत्मा कर्म एव कर्ता दोनो नही हो सकती है। वास्तव मे यह उपासक है एव मनोमयत्वादि गुण आत्मा के ही होते हैं। इस प्रसंग में पूर्व पक्ष द्वारा यह कहना कि ये गुण शरीरी आत्मा के है न कि शुद्ध आत्मा के–तर्कसंगत नहीं है। ब्रह्म में इन गुणो का माना जाना असंभव नही है। जिस प्रकार पूरे देश का राजा होने पर भी अयोध्या का राजा आदि ऐसी विशिष्ट उक्तियों द्वारा राजा अभिहित होता है, उसी प्रकार ब्रह्म भी सर्वव्यापी होकर भी अणु से छोटा आदि कहा जाता है।[1]

---

[1] सर्वगतस्य तु सर्वदेशेषुविषमानत्वत्परिच्छिन्नदेशव्यपदेशोऽपि कथाचिदपेक्षया संभवति।———सर्वगतोऽपि ईश्वरस्तत्रोपास्यमान· प्रसीदति।————तदेवं निचाप्यत्वापेक्षं ब्रह्मणोऽर्भकौकस्त्वमणीयस्त्वं च न पारमार्थिक।

ब्रह्मसूत्र शाकरभाष्य 1/2/7

जीवात्मा को द्योतित करने वाले शब्द ब्रह्म को भी द्योतित करते है। अतएव जीवात्मा के मनोमयादि शब्द ब्रह्म को नही लक्षित करते, ऐसी शका करना उचित नहीं है। ये ब्रह्मको द्योतित करते ही है। ब्रह्म सभी चीजो की अन्तरात्मा है। अतएव व्यक्तिगत आत्मा को द्योतित करने वाले शब्द ब्रह्मको भी द्योतित करते है।[1]

ब्रह्मयद्यपि निर्गुण है फिर भी साधक पर अनुग्रह के कारण वह अपनी माया से सगुण भी होता है। सगुण ब्रह्म नानारूपो में अभिव्यक्त होता है।ऐसा होते हुए भी जीवात्मा के भोग परमात्मा को प्रभावित नही करते हैं। यह कहना कि जब ब्रह्म ही सब जीवो में स्थित जीवात्मा है तो जीवों के विषय परमात्मा या ब्रह्मके विषय क्यों नहीं होंगे? इस सम्बन्ध में शंकर का कथन है कि जीवो का विषय,ब्रह्म का विषय नही हो सकता। जीवात्मा अज्ञानतावश नाना प्रकार के सम्बन्धों से अपने को बद्ध करती है किन्तु यह अज्ञान ब्रह्मके लिए सम्भव नही है। जीवात्मा एव परमात्मा के परस्पर विरूद्धधर्मी होने के कारण जीवात्मा का विषय परमात्मा का विषय नहीं हो

---

[1]सर्वात्मत्वाद्धि ब्रह्मणो जीवसंबंधीनि मनोमयत्वादीनि ब्रह्मसम्बंधीनि भवन्ति। तथा च ब्रह्म विषये श्रुतिस्मृतो भावतः।

श्वे0 4/3

इति सगुण ब्रह्मविषयेति विशेषः।

ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य 1/2/2

सकता। वस्तुतः जीवात्मा भी इन विषयों से दूर ही है। वह तो उसके लिए अज्ञानता अर्थात् भेद दृष्टि के कारण ही है। वास्तव में वह इनका भोक्ता आदि नही है,फिर ब्रह्मकहॉ इनसे सम्बन्धित हो सकता है।[1] वास्तव में यह नामरूपात्मक विश्व अज्ञान जन्य है। जिसे न तो सत् कहा जा सकता है और न असत्। अज्ञानतावश ब्रह्म को इसका कारण माना जाता है और वह परिवर्तन युक्त सावयव रूप मे लक्षित होता है किन्तु अविद्याजन्य अन्धकार के नष्ट होने पर वह ब्रह्म निरवयव एवं निर्विकार रूप में अवभासित होता है।[2] इस ब्रह्म मे अनेक शक्तियॉ है। इन सब शक्तियों से ही उसका ब्रह्म होना सिद्ध होता है। इन सबशक्तियों से युक्त होना श्रुतियों द्वारा भी स्वीकृत हे।[3] वस्तुतः शकर सत्ता के तीन स्तर मानते हैं। जो निम्नवत.–

१–पारमार्थिक

२–व्यावहारिक

---

[1] नहि अत्र शरीरः क्षेत्रज्ञः कर्त्तृत्वभोक्तृत्वादिना संसारधर्मेणोपेतो विवक्ष्यते। कथं तर्हि सर्व ससारधर्मातीतो ब्रह्मस्वभावचैतन्यमात्रस्वरूपः ।

–ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य 1/2/12

[2] पारमार्थिकेन च रूपेण सर्वव्यवहारातीतमपरिणतमवतिष्ठते।

–ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य 2/1/27

[3]सर्व कर्मा सर्वकामः सर्वगम्य.सर्वरसः सर्वमिदमभ्यातो वाक्य नादरः।

– छान्दोग्य0 3/14/4

३–प्रातिभाषिक

स्वप्नादि के विषय स्वप्नावस्था मे ही सत्य होते है। स्वप्नावस्था,जिसकी सत्ता प्रातिभाषिक होती है, जागृतावस्था प्राप्त होते ही विलुप्त एवं नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार व्यवहारिक जीवन मेसत्ता युक्त एवं सत् जैसा लगने वाला व्यावहारिक जगत् भी अज्ञानपर्यन्त ही सत् प्रतीत होता है। साधन चतुष्टय आदि के द्वारा अज्ञान के नष्ट होते ही व्यावहारिक जगत् की भी सत्ता बाधित हो जाती है एवं व्यावहारिक जीवन में हमे जो जगत्–प्रपंच अवभासित होता है वह पारमार्थिक तत्व काबोध हो जाने पर बाधित हो जाता है एव एक मात्र ब्रह्म ही सत् रह जाता है। व्यावहारिक जीवन का अवभासित यह नामरूपात्मक जगत् मायाजन्य है।

माया भी ब्रह्म की ही शक्ति है। जिस पर हम आगे विचार करेगे। इस माया से युक्त मायावी ब्रह्म ईश्वर के रूप मे जगत् को सृजित करता है। ब्रह्म का ज्ञान न होने पर्यन्त ही माया जन्य जगत् एवं मायावी ईश्वर आदि कीसत्ता है। इस माया के आवरण के हटते ही एकमात्र अखण्ड अद्वैत ही अवशिष्ट रह जाता है।[1]

---

[1] मनसो हि अमनीभावे निरोधे विवेकदर्शनाभ्यासवे राग्याभ्याम् रज्जवामिव सर्पलयं गते वा सुषुप्ते द्वैतं नैवोपलभ्यत सत्यभावात्सिद्धं द्वैतस्यासत्वमित्यर्थः।
माण्डू0गौड0कारिका शाकर0 3/31

अतएव अखण्ड अद्वैत के अतिरिक्त उत्पत्ति, प्रलय,बद्ध, साधक,मुमुक्ष और मुक्त किसी भी प्रकार का व्यवहार नही है। यह तत्व अत्यन्त दुर्दर्श है। व्यावहारिक जीव की इस तक पहुँच बहुत ही कठिन है। जिन वेदोपनिषद अनुरागी मनीषियो के राग द्वेष आदि विकार समाप्त हो चुके है, उसी को इस प्रपचातीत अद्वय का बोध होता है। ऐसा बोध हो जाने पर यह आत्मा सर्वथा रागद्वेष आदि से रहित हो स्तुति, नमस्कार आदि व्यावहारिक कोटि से ऊँचा उठकर देह एवं आत्मा मे ही विचार करने वाला हो जाता है तथा यदृच्छालाभ सन्तुष्ट हो जाता है।[1] ऐसा मनस्वी भीतर बाहर अद्वैत तत्व को ही ओतप्रोत देखकर तत्वमय हो जाता है। इस प्रकार तत्व मय हो उसी में रमण करता हुआ वह कभी तत्व से च्युत नही होता है।

आत्मा अखण्ड,एक,निर्लेप,एवं अजन्मा है। इसी कारण श्रुतियों मे अभेद दर्शन की प्रशंसा एवं भेद दर्शन की निन्दा की गयी है तथा आत्मा या ब्रह्म को ही एकमात्र सत् बताया गया है।[2] अतएव व्यावहारिक दृष्टि से ही भेद प्रतीत है। परमार्थतः उसकी गन्ध भी नहीं है। यदि भेद को

---

[1] समः तुल्यो यदृच्छालाभस्य सिद्धौ असिद्धौ च।

श्रीमद्गीता शांकर भाष्य 4/22

[2] ओमित्येतत्। कठो0 1/2/15

सर्वं खल्विदं ब्रह्म। छान्दो0 3/14/1

ब्रह्मश्च इदं विश्वम्। मुण्डो0 2/2/ 11

वास्तविक माना जायेगा तो पारमार्थिक तत्व उत्पत्तिशील होगा एव उत्पत्तिशील या परिणामी होने के कारण वह नित्य नही हो सकेगा। इसके अतिरिक्त दूसरे प्रकार से हम यह भी कह सकते है कि सत् या असत् किसी का जन्म होना भी असंभव है क्योंकि जो सत् है उसकी उत्पत्ति कैसे? इसी प्रकार जो शशश्रृग के समान असत् है उसका जन्म कैसा? अतः यह सारा द्वैत मनोदृश्य मात्र है। मन के अमनीभाव को प्राप्त होते ही द्वैत की लेश मात्र भी उपलब्धि नही होती तथा अद्वैत सत्प्रतीत होता है।

ब्रह्म ही सब कुछ है। इसके अतिरिक्त अन्य किसी की सत्ता सम्भव नही है। विश्व आदि में यही व्याप्त है। विश्वादि के साथ इसके सम्बन्ध को समझने के लिए आवश्यक है कि इस ब्रह्म के चार पादों का विश्लेषण किया जाय। उपनिषदों में इस ब्रह्म के चार पाद बताये गये हैं। ये क्मशः वैश्वानर,हिरण्यगर्भ(तैजस), प्राज्ञ तथा तुरीय हैं। इसमें प्रथम तीनों को आगे आने वाले मे लय करते हुए अन्ततः तुरीय की ही प्राप्ति अभीष्ट है। तुरीय आत्मा ही पारमार्थिक है। अतएव विश्वादि तीन पादों में से क्मशः पूर्व का लय करते हुए अन्त में तुरीय ब्रह्म की उपलब्धि होती है।[1]

---

[1] त्रयाणां विश्वादीना पूर्वपूर्व प्रविलापेन तुरीयस्य प्रतिपत्तिरिति करण साधनः पाद शब्दः तुरीयस्य———— कर्म साधनः पाद शब्दः ।
—माण्डू0 शांकर भाष्य||2||

शकर के अद्वैत ब्रह्मको समझने के लिए आवश्यक होगा कि चारो पादो का विस्तृत रूप मे उल्लेख किया जाय।

वैश्वानर—चारो पादो मे वैश्वानर प्रथम पाद है। इस वैश्वानर का स्थान जाग्रतावस्था है। इस वैश्वानर की अपने से भिन्न विषयों मे भी प्रज्ञा होती है। जिससे उसकी बुद्धि वाह्य विषयों से सम्बन्धित हुई सी भासती है। दिवलोक,सूर्य, वायु, आकाश, अन्न, पृथ्वी एवं आह्वनीय अग्नि ये सात कमशः वैश्वानर के सिर, नेत्र, प्राण, देह, मूत्रस्थान, चरण और मुख है। यहाँ अन्न से अन्न के कारण रूप जल से अभिप्राय है और इसी कारण से यह वैश्वानर का मूत्र—स्थान —ऐसा अभिहित किया गया है। इस वैश्वानर की पॉच ज्ञानेंन्द्रियॉ एवं पांच कर्मेन्द्रियॉ, पॉच प्राणाधिवायु एवं मन,बुद्धि ,अहंकार तथा चित् —ये उन्नीस मुख के समान उपलब्धि के द्वार हैं। ऐसा वैश्वानर इन उपर्युक्त द्वारो से शब्दादि स्थूल विषयो का भोग करता है। यह वैश्वानर सम्पूर्ण नरों को नाना रूपो में वहन करने के कारण वैश्वानर कहलाता है। इस प्रकार समस्त विश्व को ब्रह्म के प्रथम पाद में दिखाकर शंकर ने ब्रह्म की अद्वैतता सिद्ध करना चाहा है।[1]

---

[1]एवं च सर्वप्रपचोपशमेऽद्वैत सिद्धिः स्यात् सर्व भूतानि चात्मनि।
माण्डू0 गौ0 कारिका शांकरभाष्य 1/3

तैजसः—

इसके बाद आत्मा का द्वितीय पाद तैजस है। इसका स्थान स्वप्न है तथा यह अन्त. प्रज्ञ है। इसके सात अंग एव उन्नीस मुख है। यह सूक्ष्म विषयो का भोक्ता है। अनेक साधनवती बुद्धि मन का स्फुरण मात्र है फिर भी यह वाह्य विषय से सम्बन्धित होकर मन मे उसी के समान सस्कारो को पैदा करती है और इन सस्कारो से युक्त हुआ मन अविद्या,कामना और कामना के कारण वाह्य विषय की कामना के बिना ही प्रेरित होकर जाग्रत सा भासने लगता है। मन अन्य इन्द्रियों की अपेक्षा अन्तस्थ है। अतएव तैजस अन्तः प्रज्ञ है। इस प्रकार विश्व वाह्य विषय युक्त है और जाग्रतावस्था में स्थूल प्रज्ञा उसकी भोज्य है किन्तु स्वप्न स्थान तेजस का भोग सूक्ष्म वासनामात्र प्रज्ञा है। अपनी विषय शून्य एवं केवल प्रकाश स्वरूप प्रज्ञा का विषयी होने के कारण ही यह तैजस कहा जाता है।

प्राज्ञः—

ब्रह्म का तृतीय पाद प्राज्ञ है। यह सबका ईश्वर है एवं यह सर्वज्ञ तथा अन्तर्यामी है। समस्त जीवों की उत्पत्ति एव लय का स्थान होने के कारण यह सबका कारण भी है। अतएव आत्मा तीन प्रकार से अभिहित है। विश्व बहिःप्रज्ञ है। तैजस अन्तः प्रज्ञ एवं प्राज्ञ घन प्रज्ञ है। विश्व स्थूल

पदार्थो का भोगने वाला है। तैजस सूक्ष्म पदार्थो तथा प्राज्ञ आनन्द भोगने वाला है। आत्मा के उक्त तीन पाद रज्जुसर्पादि के समान अविद्याजनित है। सर्पादि स्थान उक्त तीनो पादो का निराकरण कर पारमार्थिक तुरीय की ही वस्तुत सत्ता है।

तुरीयः–

यह ब्रह्म का चतुर्थ पाद है। यह तुरीय न बहि· प्रज्ञ है, न अन्तः प्रज्ञ है और न प्रज्ञाधन ही है। यह तुरीय अग्राह्य, अव्यवहार्य, अलक्षण, अचिन्त्य, शान्ति, शिव एव अद्वैत है।

ब्रह्म को श्रुतियों एवं स्मृतियों में ओंकार शब्द से अभिहित किया गया है। शंकर ने भी इसे स्वीकारते हुए माण्डूक्योपरिषद् में अपने भाष्य द्वारा ओंकार की तीनों मात्राओ अ,उ,म्–स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीर के अभिमानी विश्व, तैजस एव प्राज्ञ कावर्णनकिया है। विश्व, तैजस एवं प्राज्ञ की अभिव्यक्ति की अवस्थाएँ कमशः जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति हैं एवं इनके भोग भी क्रमशः स्थूल, सूक्ष्म एवं आनन्द है। जाग्रतावस्था मे जीव दक्षिण नेत्र मे, स्वप्नावस्था मे कण्ठ में एवं सुषुप्तावस्था में हृदय में रहता है। इसी का नाम प्रपच है। यह प्रपच वास्तविक एवं पूर्ण नहीं है। पारमार्थिक तत्व इनका अधिष्ठाता, साक्षी एवं इनसे विलक्षण तुरीय आत्मा है।

ओकार की तीनो मात्राये अ, उ, म क्रमश. वैश्वानर तैजस एवं प्राज्ञ की प्राप्ति कराने वाली है किन्तु मात्रा रहित ओकार की प्राप्ति इन तीनो मे से कोई नही करा सकता है। यह मात्रा रहित ओकार तुरीय आत्मा ही है। यह आत्मा अव्यवहार्य,प्रपचोपशम एव अद्वैत है।[1] ओंकार ही पर ब्रह्म एवं अपर ब्रह्म है। इस प्रकार ओकार की तीनो मात्राओ के द्वारा वैश्वानर, तैजस एव प्राज्ञ तीनो को जानने के पश्चात् मात्रा रहित ओकार जो तुरीय आत्मा का स्थान है, को जाना जाता है। इसके जानने के पश्चात कुछ भी ज्ञेय एव प्राप्य नही रह जाता है[2] ।यह अज्ञानावस्था के समाप्ति के पश्चात शुद्ध आत्मा या ब्रह्म या मोक्ष की स्थिति है।

शंकर के अनुसार आत्मा ही सबका आधार है। इसके अतिरिक्त किसी की सत्ता नहीं है। अज्ञान वशात् ही आत्मा जीव आदि के रूप मे अपने को जानकर प्रपंचो से प्रतिबद्ध होता है।[3] शकर के अनुसार ब्रह्म या आत्मा उपाधियो से रहित निरुपाधि आसक्ति रहित एवं निराकार है।

---

[1] अव्यवहार्यग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्ययदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपचोपशमं शान्तं शिवमद्वैत चतुर्थम् मन्यते। माण्डूक्यो0 ।।7।।

[2] सर्वमद्वैतोपशमत्वादेव शिवः ओकारो यथाव्याख्यातो विदितो येन स परमार्थ तत्वस्य मननान्मुनि· ।नेतरो जनः शास्त्रविद् ———————— ।

माण्डूक्यो0 गौड0 कारिका शाकर भाष्य 1/28

[3] अहो भाग्यहीनता लोकस्यः यच्छक्यदर्शनमप्यात्मानं न पश्यति।

—बृ0उ0 शांकर भाष्य—4/3/14

इस प्रकार शकर का ब्रह्म या सत् श्रुति–स्मृति सम्मत है एव यह निराकार, सर्वव्यापी, निरकार, सर्वसत्तासम्पन्न, सर्वज्ञ, नित्य तृप्त और सच्चिदानन्द आदि के साथ–साथ "नेति–नेति" है।

इस प्रकार हम देखते है कि शकर का ब्रह्म यद्यपि द्रव्य नही है कितु वह सबका आधार है। वह निर्गुण है। वह सजातीय, विजातीय एव स्वगत सभी भेदो से रहित है।[1] शकर का ब्रह्म ही आत्मा भी है। यह ब्रह्मस्वतः सिद्ध है। शंकर का ब्रह्म अपरिवर्तनशील है। उसका न विकास होता है न रूपान्तर। वह निरन्तर एक ही समान रहता है।

शकर के ब्रह्म की सबसे बडी विशेषता यह है कि उन्होने ब्रह्म को अनिर्वचनीय अभिहित किया है। ब्रह्म को भावात्मक रूप से जानना भी सम्भव नही है। शब्दो द्वारा इसका अभिधान करना असंभव है। इस प्रकार शकर ने भी उपनिषद् के समान ब्रह्म को "नेति–नेति" कहकर उसका अभिधान किया है। शंकर ने निषेधात्मक व्याख्या के अतिरिक्त ब्रह्म का भावात्मक विचार भी किया है। वह सत् (Real) है जिसका अर्थ है कि वह असत् (Unreal) नही है। वह चित् (Consciousness) है जिसका अर्थ हे कि वह अचित् नहीं है। वह आनन्द (Bliss) है जिसका अर्थ है कि वह दुःख

---

[1]यस्मान्निरूपाधिक परमार्थतो न करोति, न लिप्यक्रियाफलेनः।
बृ0उ0 शांकर भाष्य 4/3/17

स्वरूप नही है। इस प्रकार जैसा कि विस्तृत रूप में उपर वर्णन किया जा चुका है—शंकर का ब्रह्म(सत्+चित्+आनन्द = सच्चिदानन्द) है। सत् चित् एवं आनन्द मे अवियोज्य सम्बन्ध है। अस्तु ये तीनों मिलकर एक ही सत्ता का निर्माण करते है। इसी क्रम में शकर ने बतलाया है कि सच्चिदानन्द के रूप मे ब्रह्म की जो व्याख्या की जाती है, वह अपूर्ण है, फिर भी भावात्मक रूप से सत् या ब्रह्म की इससे अच्छे ढग से व्याख्या सभव नहीं है। इस प्रकार शकर के अनुसार ब्रह्म ही एकमात्र सत् है। जगत, जीव या सम्पूर्ण जगत का प्रपच उससे अतिरिक्त न होकर वही है। इसी बात को संक्षेप में श्लोकार्ध मे—"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापर"—व्यक्त किया गया है।

शकर ब्रह्म के निम्न दो लक्षण बताते हैं————————

(१) तटस्थ लक्षण

(२) स्वरूप लक्षण

श्रुतियो एव स्मृतियो मे भी ब्रह्म के इन दो लक्षणो का विस्तृत रूप मे उल्लेख है। उपनिषदो मे इस सम्बन्ध में पर ब्रह्म और अपर ब्रह्म आदि रूप मे इसका वर्णन है। पर ब्रह्म निर्गुण, निर्विशेष, निर्विकल्प, निरुपाधिक, निष्प्रपच, अनिर्वचनीय और अपरोक्षानुभूतिगम्य है। अपर ब्रह्म को

सगुण, सविशेष, सविकल्प और सोपाधिक बताया गया है। इसी को ईश्वर भी कहा गया है। ईश्वर समस्त विश्व के कर्त्ता, नियन्ता और आराध्य है। ब्रह्मसूत्र मे भी इसी बात को स्वीकारते हुए ब्रह्म को इस जगत की उत्पत्ति, स्थिति और लय का कारण बताया गया है।[1] शंकराचार्य के अनुसार तैत्तिरीय उपनिषद् एवं ब्रह्मसूत्र का यह सूत्र(जन्माद्यस्य यतः) इगित करता है कि ब्रह्म वह है जिससे इस जगत् के समस्त पदार्थ उत्पन्न होते है और उसी मे स्थित रहकर जीवित रहते है और उसी मे पुन. विलीन हो जाते हैं।[2] इस दृष्टि से ब्रह्म के कर्त्ता,धर्त्ता, नियन्ता, सर्वव्यापी, आप्तकाम,सर्वज्ञ आदि तटस्थ लक्षणों का शंकर के द्वारा स्थान–स्थान पर यथापेक्षित उल्लेख किया गया है।

ब्रह्मकेयथोक्त तटस्थ लक्षणों के अतिरिक्त उसका स्वरूप लक्षण ही शंकर को मुख्यतयः ग्राह्य है। वस्तुत. शंकर के अनुसार ब्रह्म अपने स्वरूप लक्षण–निर्गुण, निर्विशेष, निर्विकल्प आदि वाला ही है किन्तु ब्रह्म एवं जगत की गुत्थी को सुलझाने के लिए शंकर माया का सहारा लेकर ब्रह्म को

---

[1] जन्माद्यस्य यत

— ब्रह्मसूत्र 1/1/2

[2] यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति————तद् ब्रह्म।

तैत्तिरीय उप0 3/1

उसके स्वरूप लक्षण के अतिरिक्त तटस्थ लक्षणों से युक्त भी अभिहित करते है। इसी बात को ब्रह्मसूत्र में भी वर्णित किया गया है।[1]

उपर्युक्त के दोनो लक्षणो का अभिधान करने के बावजूद शंकर ब्रह्म को अलक्षण मानते है जो एक प्रकार से उसके स्वरूप लक्षण की ओर ही इगित करता है एव इसका उल्लेख " नेति–नेति" के रूप में ही किया जाना समीचीन है।

शंकर के ब्रह्म सम्बन्धी विचारो पर दृष्टिपात करने पर अनेक शकायें –जीव क्या है? जगत् क्या है? क्या यह पूर्णतया सत् है या असत् है? उत्पन्न होती है। इन शंकाओं के निराकरण के लिए तथा अपनेअद्वैत ब्रह्म की तार्किक पुष्टि के लिए शकर ने–माया, अविद्या, अध्यास, भ्रम आदि का सहारा लिया है। अस्तु शंकर के ब्रह्म या सत् को विधिवत समझने के लिए माया आदि पर भी संक्षेपतः विचार करना अपरिहार्य एव आवश्यक है। अस्तु अब हम इन पर संक्षेप में विचार करेंगे।

शंकर का माया सम्बन्धी विचारः–

ब्रह्म ही एकमात्र सत् है–ऐसा स्वीकारने के बाद शंकर के दर्शन मेंएक समस्या पैदा हो जाती है कि जीव एवं जगत् सत् है या असत्?

---

[1] तत्तुसमन्वयात्——— ब्रह्मसूत्र 1/1/4

इस समस्या का समाधान शकर माया द्वारा करते है।उनका कथन है कि सम्पूर्ण जगत् माया है। प्रश्न हो सकता है कि फिर इनकी प्रतीति क्यों हो रही है। क्या ये चलते–फिरते मनुष्य, गगनचुम्बी चोटियो से युक्त पर्वत, भयानक हिसक सिह व्याघ्रादि–ये सब क्या है? शकर की ओर से इन सबका उत्तर यही है कि यह सब माया है। जिस प्रकार जादूगर हाथ मे बीज लेकर पेड उगा देता है, दर्शको के समक्ष वस्तुओं का ढेर लगा देता है, किन्तु ये सब क्या है? –माया। माया के अतिरिक्त ये कुछ नही है। ये सब मायावी ईश्वर का खेल है। वास्तव मे काया भी माया, जाया भी माया, भ्राता भी माया, अनुजा भी माया, ग्रीष्म की तप्त धूप में ठेला खीचने वाला भूख से ग्रसित मानव की दीनता भी माया, खस की टट्टी मे चूर्ण की सहायता से भोजन पचाने हेतु करवटे बदलने वाले पूँजी–पतियों की सारी सम्पत्ति भी माया, अट्टालिको के भोग–विलास भी माया, श्मशान का विरानापन भी माया–अन्ततः यह सब माया ही माया है। यह है शकर की माया जो सांसारिक विषमताओ से अभितप्त मानव हृदय को सिंचित कर प्रदान करती है संजीवनी। अभिलसित पदार्थों से परान्मुख हुए क्षीणकाय पुरूषों को प्रदान करती है वैजयन्ती। फिर भी इस प्रत्यक्ष जीव, जगत् की सत्ता का निराकरण नहीं किया जा सकता है। इसी लिए शंकर ने तीन प्रकार की सत्ताएँ–पारमार्थिक, व्यावहारिक एवं प्रातिभासिक, जिन पर पूर्व पृष्ठों में

वर्णन किया जा चुका है, स्वीकार किया है। नाना रूपात्मक जगत् की सत्ता व्यवहार के लिए अत्यन्त आवश्यक है। जब तक ब्रह्म का ज्ञान नही होता, तब तक लौकिक व्यवहार की सत्ता होती है। ब्रह्म ज्ञान होते ही व्यावहारिक जगत् की सत्ता बाधित हो जाती है और उस समय मात्र ब्रह्म ही एकमात्र सत् प्रतीत होता है।[1] इस प्रकार शंकर के ब्रह्म और जगत् के स्वरूप को समझने के लिए माया ही एकमात्र सम्बल है। निर्गुण एवं निर्विकार ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति कैसे? नामरूप से रहित ब्रह्म से साकार जगत् की सृष्टि कैसे? निर्गुण ब्रह्म सृष्टिकर्ता कैसे हो सकता है? निर्वि कार ब्रह्म में कर्त्तृत्व कैसे? आदि ऐसी समस्याएँ है जिनका समाधान शंकर ने माया का सहारा ले करके किया है। शंकर की यह माया उपनिषद् की माया के समान होते हुए उसका अभिनवीकरण किया हुआ रूप भी है।

शंकर के अनुसार माया ब्रह्म की शक्ति है। जहॉ व्यावहारिक जगत् की बात आती है, वहॉ शंकर का ब्रह्म ईश्वर के रूप में अपनी शक्ति माया के द्वारा जगत् के स्रष्टा के रूप में अभिहित है। माया ब्रह्म या ईश्वर

---

[1] What is real in eah jiva is only the universal Brahman itself........, what is our ordinary experience separate and distinguish one jiva from another, is the offspring of Maya and as such unreal.
Vedant Sutra Shankar Bhasya Thibaut page 25-26

की शक्ति है जिसके द्वारा इस सृष्टि की रचना होती है।[1] ईश्वर की शक्ति माया ही उपाधि अथवा प्रतिबन्ध युक्त हो अव्यक्त प्रकृति है जिससे नामरूपात्मक जगत् का सृजन होता है। यह विश्व सृजन प्रक्रिया है।[2] कृष्णद्वैपायन के वेदान्त और महामुनि कपिल के सांख्य मे वर्णित क्रमशः ब्रह्म तथा माया या पुरूष तथा प्रकृति के संश्लेषण से उद्भूत "गुणागुणेषुवर्तन्ते" विधि से सृष्टि बहुधानक संज्ञा से अभिहित हुई और परिणामतः शरीर पंच महाभूतो में निहित तन्मात्राओ से परिपुष्ट जीवात्मा का स्वरूप ग्रहण करता हुआ दिखाया गया है। यही जीव माया के कारण विमोहित हो अपने वास्तविक स्वरूप को भूल जाता है एवं अपने को कर्ता तथा भोक्ता समझने लगता है। साथ ही साथ इस जगत् के नानात्व को सत् मानने लगता है। वस्तुतः जीव की यह प्रतीति असत् है। लिंग शरीरस्थ जीव ही नहीं, देव या ईश्वर भी इस माया से विमोहित हो जाते है।[3] शंकर के अनुसार माया ज्ञान विरोधी है। जहॉ माया है वहॉ ज्ञान नहीं एवं जहॉ ज्ञान है वहॉ माया नहीं।

---

[1] एक एव परमेश्वरः कूटस्थ नित्यो विज्ञान धातुरविद्या मायया मायाविदनेकधा विभायते नान्यो ————।

ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य 1/3–19

[2] ईश्वरस्यात्मभूते इवाविद्याकल्पिते नामरूपे ————ईश्वरस्य मायाशक्ति प्रकृतिरिति च श्रुतिस्मृत्योरभिलषेते। – ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 2/1–11

[3] मायेव तस्यात्मनो देवस्य। यदा मायाविना विहिता माया गगनमतिविभातं कुसुमितैः ——————स्वयमपि मोहित इव मोहित भवति ।

माण्डू0 वैतथ्य प्रकरण कारिका शांकर भाष्य–19

माया के द्वारा अपहृत ज्ञान वाला मनुष्य ब्रह्म को नानारूपात्मक जगत् मे अवलोकित करता है एव ब्रह्म के वास्तविक रूप से परे हो जाता है। इसीलिए शकर ने ब्रह्म ज्ञान प्राप्ति हेतु माया के बन्धन को काटने की अपेक्षा की है ।[1]

माया का भाव रूप भी है। माया द्वारा सारा ससार सृजित है। माया से युक्त होकर ही ब्रह्म नाम रूपात्मक संसार की सृष्टि करता है। संसार की सारी चीजें माया के कारण ही सभव हैं। इसी कारण से पूर्ण ज्ञान न प्राप्त होने तक ही इसकी स्थिति को शंकर ने स्वीकार किया है। माया की इन विशेषताओं को ध्यान मे रखते हुए शंकरने माया को त्रिगुणात्मिका आदि नामो से अभिहित कियाहै।[2]

---

[1] दैवी देवस्य मम ईश्वरस्य विष्णो· स्वभूता हि यस्माद् एषा यथोक्ता गुणमयी मम माया दुरत्यया दुःखेन अत्यय अतिक्रमण यस्या सा दुरत्यया। ते तत्र एव सति सर्वधर्मान् परित्यज्य माम् एव मायाविनं स्वात्मभूत सर्वात्मना ये प्रपद्यन्ते मायाम् एता सर्वभूतमोहिनीं तरन्ति अतिक्रामन्ति, संसार बन्धनाद् मुच्यन्ते इत्यर्थ· ।

श्रीमद्भगवद् गीता शाकर भाष्य–7 / 14

[2] अव्यक्त नाम्नी परमेशशक्ति·
अनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका परा।
कार्यानुमेया सुधियैव माया,
यया जगत्सर्वमिदं प्रसूयते।। विवेकचूडामणि पृ0 108

शकर ने ससार मे नाशवान एव अनाशवान दो प्रकार के पुरूष माने है। समस्त भूत अर्थात् प्रकृति का सारा विकार क्षर पुरूष है। इस क्षर पुरूष का बीज रूप अक्षर है। इस अक्षर को शकर ने माया नाम से अभिहित किया है। अक्षर रूप मे पुरूष माया, कुटिलता, वचना, जिह्मता आदि नामों से अभिहित किया गया है। इस प्रकार हम देखते है। कि शंकर ने माया को वचना रूप जगत् के बीज स्वरूप अक्षर पुरूष के रूप मे भी माना है।[1]

वस्तुत पुरूष द्रष्टामात्र ही है। अपनी इस त्रिगुणात्मिक माया के द्वारा ही वह सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करता है। यह चराचर जगत् इसी त्रिगुणात्मिक माया का परिणाम है।[2]

माया की दो शाक्तियॉ हैं–(१) आवरण (२) विक्षेप। आवरण शक्ति तमोगुण प्रधान है। यह जीव के सामने ऐसा अन्धकार प्रस्तुत कर देती है जिससे उसे ब्रह्म का वास्तविक रूप ज्ञात नहीं होता है तथा जीव

---

[1] कूटस्थ कूटो राशी राशि इव स्थिति, अथवा कूटो माया वंचना जिह्मता कुटिलता इति पर्याया अनेकमायादिप्रकारेण स्थितः कूटस्थः संसार बीजानन्त्याद् न क्षरति इति अक्षर उच्यते।

श्रीमद्भगवद्गीता शांकर भाष्य 15/16

[2] मया सर्वतो दृशिमात्रस्वरूपेण अविक्रियात्मना अध्यक्षेण मम माया त्रिगुणात्मिका अविद्या–लक्षणा प्रकृतिः सूयते उत्पादयति सचराचरं जगत्।

श्रीमद्भगवद् गीता शांकर भाष्य 9/10

मोहयुक्त हो जाता है[1] तथा ब्रह्म का अनन्त एव सच्चिदानन्द स्वरूप छिप जाता है। यह माया की आवरण शक्ति का ही कार्य है।[2]

माया की दूसरी शक्ति विक्षेप है। यह रजोगुण प्रधान होती है। जब शरीरात्मा के लिए ब्रह्मका वास्तविक स्वरूप छिप जाता है तो ऐसे समय मे माया अपनी विक्षेप शक्ति के द्वारा उस ब्रह्म में नाना प्रकार के नामरूपात्मक जगत की रचना करती है।[3] इस प्रकार ब्रह्म के वास्तविक रूप के ओझल हो जाने के साथ ही साथ उसमें नाना प्रकार के नामरूपात्मक जगत् का विक्षेप भी हो जाता है। फलस्वरूप विक्षेप शक्ति

---

[1] अज्ञानेन आवृत ज्ञान विवेक विज्ञानं तेन मुह्यन्ति करोमि कारयामि मोक्ष्ये भोजयामि इति एवं मोहं गच्छन्ति अविवेकिनः ससारिणो जन्तवः।
श्रीमद्भगवद्गीता शाकर भाष्य–5–15

[2]आवरणशक्तिस्तावदल्पोऽपि मेघोऽनेकयोजनायतमादित्यमण्डलम वलोकयितृनयन पथपिधायकतया यथाच्छादयतीव तथा ज्ञान परिच्छिन्नमप्यात्मानमपरिछिन्नमसंसारिणम– –वलोकयितृबुद्धिपिधायकतयाच्छादयतीव तादृशसामर्थ्यम्। तदुक्तम्–
घनच्छन्नदृष्टिर्घनच्छन्नमर्क यथा मन्यते निष्प्रभं चातिमूढः।
तथा बद्धवद्भाति यो मूढदृष्टेः स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा इति।।
वेदान्तसार,– 52 पेज– 87

[3] Maya has two functions of concealment of the real and projection of the unreal.
Indian Philosophy, Vol. II - Dr. Radha Krishnan

आकाश आदि की सृष्टि करती है।[1]

शकर ने विवेकचूडामणि मे इन दोनो शक्तियो का बडे ही मनोरम ढग से चित्रण किया है। जिस प्रकार दुर्दिन मे मेघो के द्वारा सूर्य के छिपजाने पर शीत युक्त वायु के झोके प्राणियों को व्यथित करते है उसीप्रकार आवरण एव विक्षेप शक्ति क्रमशः ब्रह्म को ढककर जगत को भ्रान्त कर देती है।[2] आत्मा स्वय प्रकाश है। यह नित्य चेतन है। यह अपने अद्वितीय बोधशक्ति के द्वारा अपने अनन्त वैभव का स्फुरण करती है। इसप्रकार की आत्मा को तमोगुण प्रधान आवरण शक्ति ढक लेती है।[3] अर्थात् अपनी अखण्ड, नित्य बोध शक्ति के द्वारा अपने अनन्त वैभव को प्रकट करते हुए आत्मा को तमोमयी आवरण शक्ति उसी प्रकार ढक लेती है, जैसे—सूर्य बिम्ब को राहु।

---

[1] विक्षेपपशक्तिस्तु तथा रज्ज्वज्ञान
स्वावृतरज्जौ स्वशक्त्या सर्पादिकमुद्भावयत्येवमज्ञानमपि स्वावृतात्मनि
विक्षेपशक्त्याकाशादिप्रपचादिमुद्भावयति तादृशं सामर्थ्यम्।
वेदान्तसार (54), पेज—88

[2] कवलित दिननाथे दुर्दिने सान्द्रमेघै—
र्व्यथयति हिमझंझावायुरूपो यथैतान्।
अविरलतमसात्मन्यादृते मूढबुद्धि—
र्क्षपयति बहुदु:खैस्तीव्रविक्षेपशक्ति.।
विवेक चूडामणि

[3] अखण्डनित्याद्वयबोधशक्त्या स्फुरन्तमात्मानमनन्तवैभवम्।
—————— तमोमयी राहुरिवार्कविश्वम्। —विवेक चूड़ामणि।

इस प्रकार से प्रभावित अज्ञानी रागद्वेष आदि दोषों से प्रेरित होकर नाना प्रकार के धर्म एव अधर्म कर्मो को करता हुआ जन्मता एवं मरता रहता है। देहादि से अतिरिक्त आत्मा का साक्षात्कार करने वाले पुरूषो के धर्म—अधर्म विषयक कर्मो का नाश हो जाता है। फलतः उनकी प्रवृत्ति शान्ति हो जाती है और वे मुक्त हो जाते है। व्यवहारिक जीवन मे भी हम देखते है कि कंटकमय गड्ढे से गम्य रास्तेमे विवेक से काम लेकर सम्हाल कर जाने वाला पथिक सकुशल चला जाता है किन्तु अविवेकी उसमे पड़कर परेशान एव व्यथित होता है।[1] माया के वास्तविक स्वरूप को न जानने वाले इस संसार के गमनागमन में पडता है किन्तु इसके स्वरूप को जानने वाले के लिए इस ससार मे ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कुछ है ही नहीं। फलतः उपनिषद के शब्दो मे —"ब्रह्मवेद बह्मैव भवति" को सार्थक करता हुआ ब्रह्म को जानने वाला साक्षात् ब्रह्म ही हो जाता है। कुछ अज्ञानता के वशीभूत हुए पुरूष इस ससार को निराधार एव अनीश्वर मानते है। उनका मत है कि स्त्री पुरूष के संयोग से ही इस ससार की सृष्टि हुई है यह विचार "लोकायत मत" का है। उनके अनुसार काम ही जगत् का कारण है ।[2] इस प्रकार जो परलोक साधन से भ्रष्ट हो गये हैं एव अज्ञान परिवेष्ठित अल्प बुद्धि तथा उग्र कर्मा होते हैं, ऐसे पुरूष सैकडो आशाओ से परिबद्ध होकर नाना प्रकार के काम एवं भोगो की अभिलाषा करते हैं तथा अन्याय से धन के संगठन की भी इच्छा करते हैं। अस्तु माया के वशीभूत हुआ पुरूष

---

[1] मृत्यो स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति। बृहदा0 उप0 4/4/19

[2] जगतः काम एव प्राणिनाम् कारणम् इति।

— श्रीमद्भगवद्गीता शांकर भाष्य 16/2

नाना प्रकार की अभिलाषाओ से बद्धहोकर आवागमन मे पडा रहताहै एव ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप उसे दर्शित नही होता। श्रीमद्भगवद्गीता में कृष्ण ने भी कहा है कि मूढ पुरूष मुझ पर ब्रह्म को न प्राप्त करने के कारण अनेक आसुरी योनियो मे भटकता रहता है तथा अधम की गति को प्राप्त होता है।[1] शंकराचार्य ने भी इसकी पुष्टि करते हुए अविवेकी जनो के अधम गति को प्राप्त होने की बात को स्वीकारा है।[2]

इस प्रकार हम देखते है कि शकर के अनुसार ब्रह्म ही एकमात्र सत् है। वह ही जगत् का निमित्त एव उपादान कारण है। यह जगत् मायावी या जादूगर के खेल के समान असत् है। एकमात्र ब्रह्म ही सत् है। जगत् मिथ्या है। अज्ञानी को जब जगत् सत् प्रतीत होता है तो ऐसी दशा में जगत् के सृष्टि–कर्ता आदि प्रश्नों के समाधान हेतु शंकर ब्रह्म को ही जगत् के कर्ता के रूप मे स्वीकार करते हैं। ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कोई कारण रूप में नही माना जा सकता है। सृष्टि–कर्ता के रूप में ब्रह्म अनेक गुणो से युक्त ईश्वर के रूप मे अभिहित होता है किन्तु सृष्टिकर्ता

---

[1] आसुरी योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमा गतिम्।।
– श्रीमद्भगवद्गीता 16–20

[2] आसुरी योनिम् आपन्नाः प्रतिपन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि अविवेकिन. प्रतिजन्म तमोबहुलासु एव योनिषु जायमाना अधो गच्छन्तो मूढा माम् ईश्वरम् अप्राप्य अनासाद्य एव हे कौन्तेय ततः तस्माद् अपि यान्ति अधमां निकृष्टतमां गतिम्।
– श्रीमद्भगवद्गीता शांकर भाष्य–16/20

ईश्वर एव इससे निर्मित यह नामरूपात्मक जगत् अज्ञानावस्था अथवा मायावच्छिन्न होने पर्यन्त ही अपना अस्तित्व रखता है। माया अथवा अज्ञान के नष्ट होने पर जब पूर्ण ज्ञान की अवस्था आती है, उस समय एकमात्र ब्रह्म ही सत् प्रतीत होता है। छान्दोग्य उपनिषद मे भी ओकार स्वरूप ब्रह्म ही –यह सब कुछ है, ऐसा कहा गया है।[1]

अस्तु माया शकर के अनुसार केवल अद्वैत ब्रह्म के एकमात्र सत होने कीपुष्टि के लिए ब्रह्म की अनिर्वचनीय एव अनादि शक्ति है। इसकी अपने आप मे ब्रह्म से अलग यथोक्त कोई सत्ता नही है[2] तथा यह शंकर के सत् के अभिधान हेतु एक तार्किक पुष्टि ही है।

इस प्रकार माया के बारे में सक्षेपत· विचारोपरान्त अब हम अविद्या, अध्यास आदि के बारे मे संक्षेप मे विचार करेगे।

---

[1] ओकार एवेदं सर्वम्। छान्दोग्य0 2/23/3

[2] This maya is a feature of the central reality neither identical with nor different from it. To give it an independent place woud be to eccept a fundamental dualism.
Indian Philosophy Vol-II Dr. Radha Krishnan.

अविद्या :–

अविद्या का प्रयोग शकर ने प्राय माया के रूप मे किया है तथा माया से अतिरिक्त रूप मे भी इसका प्रयोग *किया गया* है। जब इस ससार के वस्तुगत क्षेत्र की व्याख्या करते है तो इस अवस्था मे शकर ने प्राय· माया का प्रयोग किया है एव जब कर्ता की दृष्टि से आत्मा के विमोहित होने की बात की गयी है तो ऐसी स्थिति मे प्राय अविद्या का व्यवहार किया गया है।[1] इस प्रकार माया एव अविद्या एक दूसरे के पर्यायवाची के रूप मे प्रयुक्त होते हुए भी अपनी विशिष्टता रखते है। जगत् के वस्तुगत क्षेत्र मे अयथावत् प्रतीति का कारण माया है एवं आत्मा के विमोहन का कारण अविद्या है।

सासारिक धर्मो से आत्मा का सम्पर्क होना अस्वाभाविक है एवं ससार धर्म शून्यता ही इसका स्वभाव है। सासारिक धर्मो से इसका सम्बन्ध उपाधियों के कारण है। यह आत्मा जिन हेतुओ से ससार धर्मित्व होता है, उसे ही अविद्या कहते है।[2]

---

[1] The concept of Maya is intimately related with that of avidya. -------- when we look at the problem from the objective side we speak of Maya and when from the subjective side, we speak of avidya. ------- The two the avidya of the individual and prakriti of Brahman arise together.

Indian Philosophy Vol. II Dr. Radhkrishnan

[2] यन्निमित्त चास्य परोपाधिकृतं संसारधर्मित्वं सा चा विद्यया।

– बृहदा० शाकर० पूर्वपक्ष 4/3/20

नामरूपात्मक जगत् से आत्मा का लिप्त होना अविद्या के कारण ही है। जब आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान कर नाना उपाधियो से अतिरिक्त सर्वात्मवाद को प्राप्त करता है तो इस अवस्था को ही मोक्ष कहते है। अस्तु अविद्या का अपकर्ष एवं विद्या की पराकाष्ठा होने पर सर्वात्मवाद की उपाधि को ही मोक्ष कहते हैं।[1] इसके विपरीत जब अविद्या का उत्कर्ष एवं विद्या का अपकर्ष होता है तब आत्मा अपने सर्वात्मवाद को भूल जाती है। ऐसी दशा मे वह परिच्छिन्नात्म–भाव वाली हो जाती है एव अपने को सर्वात्मा के रूप मे अनुभव नही कर पाती। फलतः अपने को असमर्थ रूप में देखती है। जब तक अज्ञान की निवृत्ति नही होती, तब तक यह जीव कर्म–फल के रागद्वेषादि रूप स्वाभाविक दोषो से प्रेरित होने के कारण शास्त्र कथित विधि और निषेध का उल्लंघन करके मन, वाणी और शरीर से दृष्ट और अदृष्ट, अनिष्ट के साधनभूत अधर्म संज्ञक कर्मो को अधिकता से करता रहता है, क्योकि स्वभाव–जनित दोष बहुत प्रबल होता

---

[1] तस्मादपकृष्यमाणायामविद्याया विद्यायां च काष्ठा गताया सर्वात्मभावो मोक्षः।
–बृहदा० उप० शाकरभाष्य 4/3/20

है।[1] असर्वावस्था में आत्मा अपने को अनेक वस्तुओ से अतिरिक्त देखती है। इन अतिरिक्त वस्तुओं से शरीरात्मा मारा जाता है, बाधित होता है, पराजित होता है एवं जीता जाता है। अत यह अविद्या सर्वात्मा पुरूष को असर्वात्मरूप से युक्त कराती है। आत्मा से भिन्न किसी दूसरी वस्तु के न रहने पर भी नाना प्रकार के रूपात्मक वस्तुओं को उपस्थित करती है। यह अविद्या आत्मा का स्वाभाविक धर्म नहीं है।[2] जब विद्या के द्वारा सर्वात्मभाव की पूर्ण प्रतिष्ठा हो जाती है; उस समय अविद्या से पूर्णतया मुक्ति मिल जाती है। अविद्या ही सारे दुःख का कारण है। अविद्या के कारण ही सारे दर्शन का सृजन है। अविद्या का दूर करना ही ब्रह्म प्राप्ति का फल है। इस अविद्या का दूर करना ही शकर का सर्वस्व है।[3] इस स्थिति में नामरूपात्मक ससार का नानात्व समाप्त हो जाता है तथा आत्मा का सबके साथ एकत्व

---

[1] यावद्धि तन्नापनीयते तावदय कर्मफलरागद्वेषादिस्वाभाविकदोषप्रयुक्तः शास्त्रविहितप्रतिषिद्धातिक्रमेणाति वर्तमानो मनोवाक्कायैर्दृष्टादृष्टानिष्टसाधनानि अधर्मसज्ञकानि कर्माण्युपचिनोति बाहुल्येन, स्वाभाविकदोषबलीयस्त्वात्।

————————शाकरभाष्य बृ०उ० 1/1 सबधभाष्य पेज 35

[2] किन्त्वप्रतिबोधात् अब्रह्मास्म्यसर्व च' इत्यात्मन्यध्यारोपात् 'कर्ताहं क्रियावान्फलाना च भोक्ता सुखी दुःखी संसारी' इति चाध्यारोपयति। परमार्थतस्तु ब्रह्मैव तद्विलक्षण सर्व च।

————————शाकरभाष्य बृ० उ० 1/4/10 पेज 259

[3] अविद्यापगममात्रत्वाद् ब्रह्मप्राप्तिफलस्य।

हो जाता है। ऐसी स्थिति में आत्मा से अलग कोई वस्तु नही रहती है और सर्वात्मभाव की सिद्ध होती है।[1]

आत्मा विशुद्ध ज्ञानस्वरूप है। जिस प्रकार स्वच्छ स्वभाव युक्त स्फटिक मणि हरित, नील एव लोहितादि उपाधियो के संसर्ग से केवल उन्ही के कारण उन्ही के समान हो जाती है किन्तु वस्तुतः उसमे लोहितादि धर्म भेद की कल्पना भी नही की जा सकती है; उसी प्रकार आत्मा में भी दृष्टि आदि भेद उपस्थित होते हैं। इन्द्रियों से इसका सम्बन्ध आगन्तुक है। वास्तव में आत्मा के अतिरिक्त किसी अन्य की सत्ता नही है। अज्ञानतावशही नानात्व है किन्तु यह नानात्व युक्त सम्बन्ध पूर्ण ज्ञान प्राप्ति पर्यन्त तक ही रहता है[2] एवं आत्मा नाना प्रकार के सम्बन्धों से प्रतिबद्ध भी होती है।[3] आत्मा से भिन्न और कोई वस्तु नही है किन्तु अविद्या द्वारा आत्मा से भिन्न अनेक चीजे प्रतीत

———————— शांकर भाष्य बृ० उ० 1/4/10 पृष्ठ 272

[1] तत्र चाविद्यया यदा प्रतिविक्तो भवति, तदा सर्वेणेकत्वमेवास्य भवति।
—बृहदा० शांकरभाष्य 4/3/20

[2] तस्मान्न निरवयवस्यानेकधर्मवत्त्वे दृष्टान्तोऽस्ति।
—बृ०उ० शांकरभाष्य 4/3/30

[3] यस्तु भेददृष्टिविषय सः ——— अन्योऽसावऽन्योहमस्मीति न स वेदेति— अविद्याविषय। — शांकरभाष्य— बृ०उ० उपक्रम 2/1

होती है। ऐसी स्थिति मे ही आत्मा अपने से अन्य को देखता है, अन्य को सूँघता है, अन्य का मनन एवं स्पर्श करता है।[1] यह प्राकृतिक सिर, हाथ, पॉव वाला पिण्ड जिस समय काल द्वारा पकाये हुए फल के समान वृद्धावस्था से दुर्बलता को प्राप्त होता है; उस समय विसम अग्नि हो जाने के कारण खाये हुए अन्न को नहीं पचा पाता एव उर्ध्वोच्छास लेने के समय वह माल से लदी हुई गाडी के समान शब्द करता हुआ चलता है[2] एवं मरणोपरान्त जीव के लिए फल भोग्य साधन तुल्य यह जगत् दूसरी योनि में शरीर के लिए प्रतीक्षा करता है, जैसे स्वप्नावस्था से जाग्रत स्थिति को प्राप्त करने की इच्छा वाले पुरूष के लिए शरीर पहले से तैयार रहती है, जैसे किसी जाने वाले राजा के पश्चात् आने वाले राजा के स्वागतार्थ लोग नाना प्रकार की तैयारी से युक्त हो पहले से ही उसकी प्रतीक्षा करते है – वैसे ही मृत्यु के समय में आत्मा के साथ एकत्रित होकर सम्पूर्ण प्राण भी तैयार हो जाते हैं—ऐसा शकर का मत है।[3] इस प्रकार अज्ञान अथवा अविद्या पर्यन्त यह आत्मा कर्मानुसार वासनाओ से प्रभावित होकर नाना योनियो मे भटकती रहती है। अविद्या के कारण संसार में

---

[1] तस्मादविद्याप्रत्युपस्थापितादन्य. अन्यमिव आत्मानं मन्यमानः।
– बृहदारण्यको0 शाकरभाष्य 4/3/31

[2] यदोर्ध्वोच्छवासी, तदा भृशाहितसम्भारशकटवदुत्सर्जन् याति।
बृहदारण्यो० शाकरभाष्य 4/3/31

[3] एवं तस्य तस्येन्द्रियस्य व्यापोद्भवे तत्तन्मयो भवति
– बृहदारण्यक० शाकर भाष्य 4/4/5

ससरित होने वाली यह आत्मा इहलोक एव परलोक मे गमनागमन करती है। यह वह ब्रह्म ही है जो कि निष्काम, निष्कलंक एव क्षुधा पिपासा आदि धर्मो से रहित होता है। यह अविद्या के कारण विज्ञान से लक्षित होने के कारण विज्ञानमय है। मन से सन्निधि होने के कारण मनोमय है। यह प्राणमय भी है क्योंकि प्राण पॉच वृत्तियों वाला है, इससे युक्त होने के कारण ही आत्मा प्राणमय भी कही जाती है एवं इसी कारण वह दर्शन के समय चक्षुर्मय तथा शब्द सुनने के समय श्रोतमय होती है। इसी प्रकार अन्य इन्द्रियों के व्यापारोद्भव के समय तद्रूप हो जाती है। इस प्रकार शुद्ध आत्मा बुद्धि एवं प्राण के द्वारा चक्षु आदि इन्द्रियमय होकर भूतमय हो जाती है। ऐसे समय में आत्मा पार्थिव शरीर का आरम्भ होने पर पृथ्वीमय अथवा वरूणादि लोक में जलीय शरीर का आरम्भ होने पर जलमय, वायव्य शरीर का आरम्भ होने पर वायुमय तथा आकाश शरीर का आरम्भ होने पर आकाशमय हो जाती है।[1] इसी प्रकार देव शरीर तेजस है, अतएव उसके आरम्भ होने पर यह तेजोमय हो जाती है। इसके अतिरक्त पशु एव नारकीय जीवों आदि की शरीर अतेजोमय है। इनकी अपेक्षा से यह अतेजोमय ऐसा कही गयी है। इसी तरह यह आत्मा

---

[1] ये यथा येन प्रकारेण येन प्रयोजनेन
यत्फलार्थितया मा प्रपद्यन्ते, तान् तथा एव
तत्फलदानेन भजामि अनुगृह्णामि अहम्
इति एतत्। – श्रीमद्भगवद्गीता शाकर भाष्य 4/11

देहेन्द्रिय सघातमय होकर अन्य प्राप्तव्य वस्तुओं को देखती हुई उनकी अभिलाषा करने वाली होकर कामनामय होती है और उस कामना में दोष देखकर जब तत्सम्बन्धी अभिलाषा से निवृत्त हो जाती है तब चित्त शान्त हो जाता है एवं तन्मय अर्थात् अकाम मय होती है।

इसी प्रकार यह आत्मा क्रोधमय, अक्रोधमय, धर्ममय, अधर्ममय एवं सर्वमय आदि रूप में अभिहित है। यह जैसा करने वाली एव जैसा आचरण वाली होती है वैसी ही हो जाती है। शुभ करने वाली शुभ होती है, पाप कर्मा पापी होती है।[1] पुरूष पुण्य कर्म से पुण्यात्मा होता है और पाप कर्म से पापी होता है। इससे स्पष्ट है कि यह आत्मा अज्ञानता वश कामना के कारण नाना रूप वाली एवं ससार धार्मित्व होती है।[2]

शकर के अनुसार उपर्युक्त प्रकारेण आत्मा का अपने को अयथावत् मानना अविद्या के कारण ही है। जिस समय इस अविद्या का साधन चतुष्टय आदि के द्वारा विनाश हो जाता है उस समय आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप को

---

[1] तस्मात् पुण्यो वै शास्त्रविहितेन पुण्येन
कर्मणा भवति तद्विपरीतेन विपरीतो भवति पाप पापेन।
—बृहदा0 शाकर भाष्य 3/3/13

[2] तस्मात् सर्वमयत्वेऽस्य ससारित्वे च काम एव हेतुरिति।
—बृहदा0 शाकर भाष्य 4/4/5

प्राप्त कर लेती है[1] और यह ही मोक्ष है। अतएव शंकर के अनुसार मोक्ष किसी नवीन अन्य वस्तु की प्राप्ति न होकर अज्ञान नष्ट होने के पश्चात् आत्मा की अपनी वास्तविक स्थिति की प्राप्ति है। इसीलिये मोक्ष को शकर ने–"प्राप्तस्व प्राप्ति"–कहा है।

इस प्रकार शकर के अविद्या सम्बन्धी विचारों पर प्रकाश डालने के बाद प्रसगत. आये हुए–अध्यास, भ्रम, असत्, सत्, मिथ्या–आदि पर भी सूक्ष्म दृष्टिपात करना आवश्यक है। यथापूर्ण वर्णित माया ही अध्यास है। यह किसी वस्तु पर किसी अन्य वस्तु का आरोप या विक्षेप है। इस अध्यास को शंकर ने भ्रम भी कहा है। यह अध्यास या भ्रम मिथ्या ज्ञान या अन्यथा ज्ञान है। जैसे–रज्जु सर्प का या शुक्ति रजत का। अध्यास के पूर्व अज्ञान या आवरण का होना आवश्यक है। अस्तु माया का वर्णित विक्षेप ही अध्यास है। अध्यास भी अज्ञान पर्यन्त है। अस्तु जहॉ जो वस्तु नही है, वहॉ उस वस्तु को कल्पित करना अध्यास है। यह माया एव अज्ञान के कारण ही है। जब माया एव अज्ञान

---

[1] ससारे दुःखापनयार्थित्व प्रवृत्ति दर्शनात्स्फुटमन्य
–त्वमीश्वरात्ससारिणोऽवगम्यते।

–बृहदा0 शाकर भाष्य 1/4/10

अथवा अविद्या का विनाश हो जाता है तो यह भी स्वयमेव समाप्त हो जाता है शकरने अध्यास के तीन लक्षण बताये है।[1]

प्रथम लक्षण के अनुसार :– अध्यास स्मृति रूप परत्र पूर्वदृष्टावभास है। अध्यास अवभास है और यह अवभास पूर्व दृष्ट वस्तु (उस वस्तु का जो पूर्व मे देखी गयी थी किन्तु अभी नही है) का है। यह अवभास स्मृति रूप है, अर्थात् स्मृति तो नही है, किन्तु स्मृति के समान रूप वाला है अर्थात् जिस प्रकार स्मृति सस्कार जन्य है उसी प्रकार यह अवभास भी सस्कार जन्य है। यह अवभास परत्र है। अर्थात् अपने 'अधिकरण' मे है जो इस समय यहॉ उपस्थित है। इस लक्षण के अनुसार अध्यास या भ्रम के तीन घटक होते है :–

(i) वह वस्तु जो यहॉ इस समय उपस्थित और सत् है। यह वस्तु भ्रम का अधिष्ठान या अधिकरण है जिस पर किसी वस्तु का आरोप या अध्यास किया जाता है। जैसे रज्जु या शुक्ति।

---

[1] ... ... विषयिणि चिदात्मके विषयस्य तद्धर्माणां चाध्यासः विषयिणस्तद्धर्माणां च विषयेऽध्यासो मिथ्येति भवितु युक्त्म। – ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य, उपोद्घात।

(ii) पूर्व काल मे जिस वस्तु का प्रत्यक्ष हुआ था जो अपने स्वरूप में भले ही सत् हो किन्तु यहॉ उपस्थित न होने के कारण असत् है। यह वस्तु अध्यस्थ है अर्थात् इस का अध्यास अधिष्ठान पर किया जाता है। जैसे–सर्प या रजत्।

(iii) आरोप की क्रिया अर्थात् अध्यस्थ वस्तु का उपस्थित अधिष्ठान पर आरोप किया जाता। जब ये तीनो घटक होगे तभी अध्यास या भ्रम होगा।[1]

शंकर ने **अध्यास का दूसरा लक्षण** बताते हुए कहा है कि अध्यास किसी अन्य वस्तु का किसी अन्य वस्तु के रूप मे अवभासित होना है।[2] जैसे रज्जु या शुक्ति पर सर्पत्व या रजतत्व का आरोप। **अध्यास का तृतीय लक्षण** किसी वस्तु का उससे अतिरिक्त अन्य वस्तु के रूप मे ज्ञान है।[3]

इस प्रकार अध्यास या भ्रम सम्बन्धी उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि अध्यास मिथ्या ज्ञान है। यह असत् का सत् पर आरोप है। शंकर ने प्रभाकर और न्याय के क्रमश· अख्यातिवाद और अन्यथाख्यातिवाद का उल्लेख करते हुए

---

[1] अध्यासो नाम स्मृतिरूप· परत्र पूर्वदृष्टावभास·। –ब्रह्मसूत्रशाड्करभाष्य, उपोद्धात,

[2] अन्यस्य अन्यधर्मावभासता।
ब्रह्मसूत्रशाकरभाष्य, उपोद्धात,

[3] अतस्मिन् तद्बुद्धि।
ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य, उपोद्धात।

भ्रम को विवेकाग्रह या ज्ञानाभाव या अपूर्ण ज्ञान नहीं अपितु मिथ्या ज्ञान या अन्यथा ज्ञान बताया है। अध्यस्थ पदार्थ सत् नही है। अधिष्ठान का ज्ञान होते ही यह बाधित हो जाता है। वस्तुत यह असत् भी नही है क्योकि भ्रम दशा में उसकी प्रतीति होती है। अत. इसे–सदसद् अनिर्वचनीय कहा जाना भी समीचीन होगा और इसका अस्तित्व भी अज्ञान पर्यन्त है।

अध्यास सम्बन्धी शकर की उपर्युक्त विवेचना के क्रम में–भ्रम, मिथ्या, असत् आदि शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। वस्तुत. माया, अविद्या, मिथ्या या भ्रम शंकर के अनुसार सदसदनिर्वचनीय है। जो मिथ्या है वह अविद्या या भ्रम या माया है। वही असत् भी है। शंकर के अनुसार ब्रह्म या आत्मा ही सत् है और वही परमार्थ है। शकर के अनुसार असत् वह है, जिसकी सत्ता त्रिकाल बाधित हो। इस अर्थ मे बन्ध्यापुत्र एव आकाश कुसुम ही असत् है। शंकर के वेदान्त मे सत् एव असत् शब्द अपने आत्यन्तिक अर्थ में प्रयुक्त हुये है। हमारे लौकिक व्यवहार मे ऐसी कोई वस्तु नही है जिसे हम शांकर वेदान्त के अनुसार सत् या असत् कह सके। सत् ब्रह्म हमारे लौकिक अनुभव के ऊपर है और असत् बन्ध्यापुत्र और आकाश कुसुम आदि लौकिक अनुभव के नीचे है। अस्तु हमारे लौकिक अनुभव का सारा क्षेत्र सदसदनिर्वचनीय या मिथ्या पदार्थों तक

सीमित है। वस्तुत शकर का ब्रह्म एक मात्र सत् है। सारा जगत् उसका विवर्तहै। व्यावहारिकजगत्ईश्वर में है एवं ईश्वर की ही सत्ता है। जगत् मात्र ईश्वर का विवर्त है। ऐसे में शकर के अद्वैतवाद के विवर्तवाद के अनुसार ब्रह्म ही एकमात्र सत् है विश्व की उससे अतिरिक्त सत्ता नही है अथवा यह इन्द्रिय जगत् आभास या विवर्त मात्र है–ऐसा कहना विरोधपूर्ण नही है।[1]

इस प्रकार शांकर वेदान्त मे सत् या ब्रह्म की विवेचना एवं इसी क्रम मे माया, अविद्या आदि की विवेचना से स्पष्ट है कि शंकर का सत् सम्बन्धी विचार पूर्णतया तर्क की कसौटी पर खरा उतरता है किन्तु यह तर्क अपरोक्षानुभूतिगम्य तर्क है जिसके अनुसार पूर्ण मे से पूर्ण निकाल लेने पर भी पूर्ण ही शेष बचता है (पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते)। इस अलौकिक तर्क द्वारा ही ब्रह्म के सत् सम्बन्धी विचारो का अभिधान किया जाना सम्भव है। लौकिक भाषा एव लौकिक तर्क अनेक कमियों से युक्त हैं एव इसके द्वारा शकर के पारलौकिक एवं पारमार्थिक सत् का अभिधान किया जाना असंभव है।

---

[1] Thus it would not be self-contradictory to say on the one hand that the world is in God or that modes are part of God and on the other that the world of the senses is only in imagination.
Spinoza in the light of the Vedanta
Substance
R. K. Tripathi. P. 128

इसीलिए लौकिक भाषा द्वारा सत्, असत्, माया, मिथ्या, भ्रम आदि की व्याख्या के क्रम मे आयी हुई शकाओं के निराकरण हेतु शकर ने उसे सदसदनिर्वचनीय कहकर अपने मत की पुष्टि की। वस्तुत. शंकर का यह विचार भारतीय दर्शन ही नही अपितु विश्व के दर्शन के लिए सजीवनी है, ऐसा कहा जाना अयथावत् न होगा।

इस प्रकार शंकर के सत् सम्बन्धी विचारो पर एव उसके क्रम मे आये हुए अन्य माया आदि पर विचार करने के बाद अब शोधप्रबन्ध के अन्य अध्याय स्पिनोजा के दर्शन में सत् का स्वरूप पर विचार करना समीचीन है।

अध्याय 3

स्पिनोजा के दर्शन में सत् का स्वरूप :—

स्पिनोजा पाश्चात्य दर्शन में अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। ये विलक्षण तथा प्रतिभाशली थे एवं गणित, दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान थे। दर्शन को मात्र नट–विद्या न मानकर इन्होने इसके व्यावहारिक पक्ष पर बल दिया है तथा अपने सिद्धान्तों को जीवन मे उतारने का प्रयास किया है। उनका प्रसिद्ध दार्शनिक ग्रन्थ ETHICA है। स्पिनोजा के दर्शन पर निकोलस, ब्रूनो एव डेकार्ट का बहुत अधिक प्रभाव पडा है। स्पिनोजा के दर्शन की नीव ब्रूनो के सर्वेश्वरवाद एव डेकार्ट के बुद्धिवाद पर पडी है। इनका दर्शन विशेष रूप से डेकार्ट के विचारो से प्रभावित है।

स्पिनोजा ने डेकार्ट के मूल विचारों को ही अपने ढंग से विकसित एवं पल्लवित किया है। डेकार्ट के समान उन्होंने दर्शन सत्य की खोज है, सत्य के स्वत सिद्ध और प्रमाणजन्य दो रूप है; दर्शन की पद्धति सन्देह को साधन मानने की है–आदि को स्वीकारा है। डेकार्ट के समान पदार्थ को इन्होंने भी द्रव्य, गुण, पर्याय में विभक्त किया है किन्तु डेकार्ट के दर्शन मे जो कमियाँ थी,

उसको इन्होंने सुधारने का प्रयास किया। डेकार्ट ने आत्मा को स्वत सिद्ध और स्वप्रकाशवान माना किन्तु इन्होंने आत्मा और जीवात्मा के अन्तर को नही समझा और स्पिनोजा ने आत्मा के स्वरूप को समझकर उसको परमात्मा और अद्वैत के रूप मे अभिहित किया। यह आत्मा या परमात्मा ही स्वतः सिद्ध और स्वप्रकाश है जीवात्मा नही। डेकार्ट का द्रव्य–पर द्रव्य एव अपर द्रव्य तथा चेतन द्रव्य एव विस्तृत द्रव्य के द्वैत के दलदल मे फॅस गया है। स्पिनोजा ने इस असंगत द्वैत को ठुकराकर उसे सशोधित रूप मे स्वीकारा है। इन्होंने द्रव्य को स्वतन्त्र सत्ताशील मानते हुए एकमात्र ईश्वर को ही द्रव्य के रूप में स्वीकार किया है क्योंकि केवल ईश्वर की ही स्वतन्त्र सत्ता है। स्पिनोजा ने डेकार्ट के चित् और अचित् को द्रव्य के पद से उतारकर गुण के रूप में स्वीकारा। उनके अनुसार चित् और अचित् दोनों ईश्वर के गुण हैं। इस प्रकार स्पिनोजा ने डेकार्ट के द्वैतवाद को समाप्त कर अपने अद्वैतवाद की स्थापना की है।

स्पिनोजा के दर्शन मे द्रव्य गुण और पर्याय अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। इन तीनो में भी मुख्य द्रव्य ही है। स्पिनोजा के अनुसार द्रव्य की ही अपनी स्वतन्त्र सत्ता है और यह अपने ज्ञान के लिए अन्य किसी की अपेक्षा नही रखता। द्रव्य के अतिरिक्त गुण और पर्याय की स्वतन्त्र सत्ता स्पिनोजा को

स्वीकार नही है। इनके अनुसार गुण द्रव्य का स्वरूप धर्म तथा पर्याय द्रव्य का परिणामी धर्म है। ये तीनो एव इनमें भी द्रव्य ही स्पिनोजा के दर्शन का सर्वस्व है। स्पिनोजा का द्रव्य ही उनके दर्शन का सत् है। यही उनका ईश्वर है। यही उनका परमात्मा है। अस्तु अब हम स्पिनोजा के दर्शन के सर्वस्व द्रव्य एवं उसके बाद गुण एवं पर्याय आदि पर सक्षेपतः विचार करेगे।

स्पिनोजा का द्रव्य (सत्) :–

स्पिनोजा के अनुसार द्रव्य वह है जिसकी स्वतन्त्र सत्ता है और जो अपने ज्ञान के लिए अन्य किसी पदार्थ की अपेक्षा नहीं रखता। द्रव्य ही सभी पदार्थो का आधार है और अपने अस्तित्व के लिए सभी पदार्थ इस पर निर्भर करते है। स्पिनोजा का द्रव्य निरपेक्ष है। यही सबका कारण है और जगत् मे मात्र वही सार्वभौम, अनन्त एवं असीमित सत् है।[1] अपने परमार्थिक द्रव्य को परिभाषित करने हेतु स्पिनोजा ने इस पर विस्तार से प्रकाश डाला है। परम सत् कहलाने के तीन लक्षण आवश्यक है:–

---

[1] The absolutely infinite and indeterminate substance is, according to him, the sole cause and the only reality of the universe.
Spinoza in the light of the Vedanta.
R. K. Tripathi.

(i) ऐसा द्रव्य अपने से अतिरिक्त किसी अन्य की अपनी परिभाषा हेतु अपेक्षा न करे।

(ii) द्रव्य इस रूप मे परिभाषित हो जिससे उसके अस्तित्व के विषय मे सन्देह न हो।

(iii) द्रव्य इस रूप में परिभाषित हो जो किसी प्रकार से बाधित न हो।[1]

इन लक्षणो को दृष्टि मे रखते हुए स्पिनोजा ने कहा है कि द्रव्य वह है जो अपने में ही अन्तर्निहित है एव जो अपने ज्ञान के लिए अन्य पर निर्भर नही करता।[2] स्पिनोजा का द्रव्य अन्तर्यामी है। वह इस सृष्टि के कण–कण मे व्याप्त है। उसकी सर्वव्यापाकता ही उसकी सार्वभौमिकता का आधार है। यह सम्पूर्ण सृष्टि उसी मे है। उसके परे कुछ नहीं है। अस्तु इस

---

[1] 'Substance is that which is in itself and is conceived by itself, that is, the conception of which does not need to form, from the conception of any other thing.'

- Ethics, Part I, Definition No. 3

[2] Keeping all these in view the only correct definition of substance is "that which is in itself and is conceived through itself."
Spinoza in the light of the Vedanta-Substance.

- R K. Tripathi. Page 79-80

द्रव्य का ज्ञान अन्य पर निर्भर नही होने से स्पिनोजा का अभिप्राय है कि उसके ज्ञान के लिए उससे अन्य किसी की अपेक्षा नही है। यह पूर्णतया स्व–आधारित है एवं उसके अनेक गुणों का अभिधान सभव है।[1]

स्पिनोजा का द्रव्य स्वयभू है। इसका अन्य कोई कारण नहीं है। यह सभी का कारण है। अगर इसका कारण माना जायेगा तो अनावस्था दोष होगा एव द्रव्य की अपनी सत्ता एव इसका स्वरूप भी बाधित होगा। अगर द्रव्य अपनी सत्ता के लिए अन्य पर निर्भर करेगा तो इसकी पूर्णता आदि बाधित होगी। अस्तु स्पिनोजा ने द्रव्य को यथोक्त स्वयभू आदि नामो से अभिहित किया है।[2]

स्पिनोजा का द्रव्य अनिर्वचनीय भी है क्योकि मनुष्य की वाणी की पहॅुच उस तक नही है। यह द्रव्य निर्विकल्प अनुभूति का विषय है। गुण

---

[1] When spinoza speaks of substance as self-conceived and says that the knowledge of substance does not depend on any other knowledge, he is only making a demand that a kind of knowledge other than that of modes must be admitted.
spinoza in the light of the Vedamata
substance

- R K Tripathi Page 81

[2] ...."must explain the inmost essence of a thing, and must take care not to substitute for this any of its properties".

- Emendatione, P. 32

बुद्धि के विकल्प है। किसी गुण का अभिधान करने से उसे अन्य गुणो से अतिरिक्त करना होगा एवं ऐसे मे उसकी सार्वभौमिकता बाधित होगी। सभी निर्वचन से अन्य का निषेध होता है।[1] ऐसे मे स्पिनोजा अपने द्रव्य को निर्गुण अथवा अनिर्वचनीय कहता है। इस प्रकार शंकर के ब्रह्म के समान स्पिनोजा भी अपने द्रव्य को अनिर्वचनीय कहते है किन्तु इनका अनिर्वचनीय कहने से अभिप्राय द्रव्य का गुणों से रहित होना नही है। इस प्रकार स्पिनोजा ने द्रव्य को अनन्त गुणो से युक्त होने के कारण ही इसे निर्गुण या अनिर्वचनीय कहा है। अस्तु स्पिनोजा माध्यमिको एव अद्वैत वेदान्तियो की तरह निषेधात्मक पद्धति का प्रयोग करते हुए नेति–नेति (Not this Not this) द्वारा इसका निर्वचन किया है। स्पिनोजा का यह द्रव्य अपरोक्षानुभूति अथवा प्रज्ञात्मक ज्ञान (Intutive experience) का विषय है।

स्पिनोजा के द्रव्य के सम्बन्ध मे संक्षेपतः उपुर्यक्त प्रकारेण विचार करने से स्पष्ट है कि यह द्रव्य ही स्पिनोजा का सत् है। स्पिनोजा का यह द्रव्य या सत् यथोवत् अपरिमित, स्वयभू एव अद्वितीय है तथा इसे ही उन्होने ईश्वर के रूप में अभिहित किया है। अस्तु अब हम स्पिनोजा के द्रव्य या सत् स्वरूप

---

[1] "Determinatio Negatio est."

इस ईश्वर के बारे मे विचार करे इससे पूर्व आवश्यक होगा कि सक्षेपतः इस द्रव्य के गुण एवं पर्याय पर भी दृष्टिपात किया जाय एवं तत्पश्चात् ईश्वर सम्बन्धी विचारो पर प्रकाश डाला जाय।

गुण (Attributes) :-

स्पिनोजा का द्रव्य सम्बन्धी उपर्युक्त विचार इनको अनेक दार्शनिक परेशानियो मे डाल दिया। उनका सभी गुणों से रहित द्रव्य सृष्टि का कारण कैसे हो सकता है? स्पिनोजा का यह द्रव्य वस्तुत ज्ञानका आदि न होकर अन्त है।[1] स्पिनोजा अपनी दर्शन की इस परेशानी का अनुभव करते हुए गुण (Attributes) की शरण ली। उनका यह गुण द्रव्य पर आश्रित एवं उसका अपना सारतत्व है। इस प्रकार द्रव्य के अपरिच्छिन्न, निर्गुण एवं सारतत्व रूप मे अभिधान को सार्थक बनाने हेतु स्पिनोजा ने गुण का सहारा लिया। इन गुणों के आधार रूप मे द्रव्य को स्वीकार कर स्पिनोजा ने अपनी दार्शनिक परेशानी को दूर करने का प्रयास किया है।[2]

---

[1] ....the end rather than the beginning of knowledge"
Caird, P. 131.

[2] The concept of substance as indeterminate pure being requires that the attributes must be regarded only as ascriptions
Spinoza in the light of the Vedanta Attributes, P. 161
- Rama Kanta Tripathi.

स्पिनोजा द्रव्य के अनिवार्य धर्मो को गुण कहता है। उनका द्रव्य अनन्त गुणो से युक्त है। स्पिनोजा गुण की परिभाषा करते हुए कहता है कि "गुण वे धर्म है जिनको बुद्धि द्रव्य का स्वरूप समझती है।"[1] स्पिनोजा का द्रव्य असीमित है। अस्तु ऐसे द्रव्य मे अनन्त गुणों का होना भी स्वाभाविक है। मनुष्य द्रव्य के अनन्त गुणों मे केवल दो गुण को ही जान सकता है। ये दोनो विचार एवं विस्तार है। ये दोनो गुण मनुष्य मे पाये जाते है। ऐसे मे इनका ज्ञान उसके लिए सुगम है। यद्यपि द्रव्य के अन्य गुणो को मनुष्य नहीं जान सकता तथापि उन्हे न जानने से कोई विशेष हानि नही होती है। केवल दो गुण के ज्ञान तथा उनके पारस्परिक संबधो के बोध से द्रव्य की सम्यक अवधारणा की जा सकती है। विचार एवं विस्तार एक दूसरे से भिन्न गुण है। ये दोनो दो स्वतन्त्र गुण है। एक दूसरे से भिन्न होते हुए भी ये परस्पर अवियोज्य है क्योकि ये ईश्वर के सारतत्व को अभिव्यक्त करते है। इस प्रकार प्रत्येक गुण में अपने प्रकार की अपरिच्छिन्नता निहित है।

---

[1] By attribute, I mean that which the intellect perceives as constituting the essence of substance".

- Ethics, Part I, Def. 4

स्पिनोजा की गुण की इस प्रकार की परिभाषा विवाद का विषय रही है। प्रत्ययवादी दार्शनिको के अनुसार ये गुण वस्तुतः ईश्वर मे नही है। मानव बुद्धि इन गुणो को ईश्वर में आरोपित करती है। हेगल एव अर्डमान एव जॉन केयर्ड गुणों की प्रत्ययवादी व्याख्या करते है। ये दार्शनिक गुण की परिभाषा मे "बुद्धि समझती है" इस अश पर अधिक जोर देकर कहते हैं कि ये गुण वस्तुत. द्रव्य में नही है। बुद्धि इन्हे द्रव्य मे आरोपित करती है। वस्तुतः द्रव्य निर्गुण एवं अनिर्वचनीय है। हेगल के अनुसार निर्गुण द्रव्य सगुण कैसे हो सकता है? अस्तु निर्गुण द्रव्य को गुणो से युक्त कहना आत्मघाती है। इस प्रकार सिद्ध होता है कि द्रव्य गुण रहित है एव गुण बुद्धि कल्पित है जिन्हे द्रव्य पर आरोपित किया जाता है।

इनके विपरीत यथार्थवादी दार्शनिक "द्रव्य का सारतत्व" इस अंश पर विशेष बल दिया है। इस मत के प्रबल समर्थक कुनोफिशर हैं। चूँकि स्पिनोजा गुणों को द्रव्य का सारतत्व मानता है। ऐसे में गुण द्रव्य के वास्तविक धर्म है, ऐसा मानना ही समीचीन है। स्पिनोजा का यह कथन है कि "प्रत्येक गुण निषेधात्मक होता है", इसका यह अर्थ कथमपि नही है कि द्रव्य निर्विशेष अथवा गुणों से रहित है। ऐसा द्रव्य जो समस्त गुणो से रहित होता है, पूर्ण

नहीं हो सकता। वास्तव मे द्रव्य के सन्दर्भ मे गुणों की व्याख्या साधारण मानव एव भाषा द्वारा सभव नही है। द्रव्य को निर्गुण कहने का अभिप्राय उसके असीम होने से है। अस्तु उसे गुणो से सीमित नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार प्रत्ययवादी एव यथार्थवादी दोनो दार्शनिको ने स्पिनोजा के दर्शन को बिना विधिवत् समझे ही उसकी आलोचना की है। इनकी आलोचनायें एक पक्षीय है। स्पिनोजा के गुण के सम्बन्ध मे ये दोनो व्याख्याएँ पूर्वाग्रह से युक्त प्रतीत होती है। इनके गुण की परिभाषा न तो प्रत्ययवादी है और न यथार्थवादी है। स्पिनोजा ने विचार एवं विस्तार–इन दो गुणो का उल्लेख द्रव्य के अन्तर्गत किया है। इनमें से कोई गुण अधिक महत्वपूर्ण न होकर दोनो समान स्तरीय है।

वस्तुतः हेगल की दार्शनिक विचारधारा में निर्विशिष्ट सत्ता का कोई स्थान नही है एवं ये स्पिनोजा के प्रबल विरोधी थे। यही कारण है कि उन्होने स्पिनोजा के दर्शन की कडी आलोचना की है। इसी प्रकार कुनो फिशर, जो कि ईसाई धर्म से प्रभावित थे, के अनुसार सृष्टि वास्तविक है, एव उनके अनुसार ईश्वर के होते हुए भी सृष्टि यथार्थ है किन्तु स्पिनोजा को यह स्वीकार नही है। उनके अनुसार सृष्टि न तो ईश्वरीय निष्क्रमण है और न दैवी चमत्कार

का परिणाम है। यह ईश्वर के स्वभाव से तर्कत. निगमित होती है। इस प्रकार संक्षेपत स्पिनोजा के अनुसार सृष्टि का सत्यत्व ईश्वर पर निर्भर है और उनसे पृथक नही। उनके अनुसार पारमार्थिक दृष्टि से ईश्वर निर्गुण एव अनिर्वचनीय है तथा व्यावहारिक दृष्टि से यह सगुण एव सविशेष है। अस्तु व्यावहारिक दृष्टि से विश्व का सत्यत्व अक्षुण्ण है तथा मूलत द्रव्य निर्गुण, अनिर्वचनीय एवं निष्क्रिय है किन्तु सक्रिय एव सृष्टि की रचना की दृष्टि से द्रव्य अनिवार्यत यथोक्त गुणो से युक्त है।[1]

इस प्रकार स्पिनोजा के द्रव्य एवं गुणो की आलोचना का कारण उनके दर्शन में मान्य उनकी दो दृष्टियो के भेद की उपेक्षा से है। स्पिनोजा के अनुसार नित्य दृष्टि से केवल द्रव्य की ही सत्ता है एवं अनित्य दृष्टि से विकारो के रूप में अनेक जीवात्माओ एवं वस्तुओ की अनेकता दिखायी देती है। स्पिनोजा का यह नित्य दृष्टि एव अनित्य दृष्टि का भेद अद्वैत वेदान्त की

---

[1] We have held that the Absolute as such is not dynamic and that in order to be dynamic or creative it has to be associated with its Attributes: that is to say that Attributes make substance creative.
Spinoza In The Light Of The Vedanta.
Modes, Chapter -VI page 197
- R. K. Tripathi

पारमार्थिक सत्ता एवं व्यावहारिक सत्ता के समान है एवं इनमे कोई अन्तर्विरोध नही है।[1]

स्पिनोजा ने द्रव्य एव गुण के स्वरूप पर दो दृष्टियो से विचार किया है। प्रथम नित्य या पारमार्थिक (Sub-spice Aeternitatis) दृष्टि से द्रव्य (ईश्वर) निर्विशेष है। इसमें अनन्त गुण हैं। वाणी द्वारा इनका निर्वचन सभव नही है। सीमित मानव बुद्धि एवं भाषा उसका विवेचन एवं मूल्यांकन नहीं कर सकती। इस दृष्टि से ईश्वर अनिर्वचनीय है। द्वितीय अनित्य या व्यावहारिक (Sub spice Temporis) दृष्टि से यह सृष्टि वास्तविक है। गुणों की अभिव्यक्ति द्रव्य की स्वभाविक क्रियाशीलता का परिणाम है। द्रव्य नित्य, परिणामी या विकारवान है। स्पिनोजा के इन दोनो दृष्टिकोणो की पुष्टि उनकी ज्ञानमीमांसा से भी होती है। वह समस्त इन्द्रियानुभव एव लोक परम्पराओं पर आधारित ज्ञान को काल्पनिक ज्ञान (Imaginatio) कहता है।[2] इसे ज्ञान का अस्पष्ट, अविवेकपूर्ण एवं अपर्याप्त स्तर कहा जा सकता है। इस स्तर पर द्रव्य के विश्व

---

[1] For the present it is only to be noted that the attributes are not of the empirical order of subjectivity but of the transcendental order

Spinoza In The Light Of The Vedanta.
Attributes Page 165
- R.K. Tripathi

[2] Ethics, Part II, Propositon XI, Note II

रूप (Natura Naturata) का ज्ञान होता है। द्वितीय स्तर पर बौद्धिक ज्ञान (Intellectus) आता है। इसस्तर पर भेदो मे अनुस्यूत अभेदो का ज्ञान प्राप्त होता है। यह ईश्वर के विश्वात्म रूप (Natura Naturans) का ज्ञान है। इसके अन्तर्गत इन्द्रियानुभव ज्ञान के विपरीत वस्तुओ के सामान्य एवं सर्वगत लक्षणो का ज्ञान होता है।[1] तृतीय स्तर पर ज्ञान का सर्वोच्च स्तर प्रज्ञात्मक ज्ञान (Intutio) है जिसमें ईश्वर के निर्विशिष्ट (निर्गुण) रूप का साक्षात्कार होता है।[2] यही परम् शुभ (ईश्वर) के साक्षात्कार की अवस्था है। इस प्रकार स्पष्ट है कि स्पिनोजा के गुण सिद्धान्त की प्रत्ययवादी और यथार्थवादी दार्शनिकों द्वारा की गयी व्याख्यायें एकांगी है। वस्तुतः इनकी गुण सम्बन्धी विचारधारा असंगत एव विरोधपूर्ण नहीं है।

अस्तु गुणो पर विचार करने के बाद अब स्पिनोजा के पर्यायो पर विचार करना समीचीन है।

पर्याय अथवा विकार (MODES)

---

[1] Ethics, Part II, Propositon XI, Note II

[2] It proceeds from an adequate idea of the absolute essence of certain attributes of God to the adequate knowledge of the things.
Ethics, Part II, Prop. 40 Note II

पर्याय द्रव्य के विकार है। ये द्रव्य के परिणामी धर्म है। स्पिनोजा के अनुसार विकार द्रव्य की परिवर्तित आकृतियॉ है। विकार वह है जो दूसरो पर आश्रित होता है और उसके द्वारा समझा जाता है।[1] इस प्रकार पर्याय द्रव्य के आगन्तुक धर्म है, ये वास्तविक नही है। इनकी सत्ता द्रव्य पर निर्भर है एवं येगुणो के माध्यम से अभिव्यक्त होते है।[2]

प्रश्न हो सकता है कि ये पर्याय द्रव्य पर ही क्यों आश्रित माने जायॅ? इन विकारों को परस्पर एक दूसरे पर आश्रित क्यो न माना जायॅ? एक विकार को दूसरे पर एव दूसरे को तीसरे पर आश्रित क्यो न माना जाय? किन्तु ऐसा मानने पर अनावस्था दोष होगा। ऐसी स्थिति मे विकारों को द्रव्य आश्रित मानकर इन दोषों से बचा जा सकता है एवं इसी दृष्टि से स्पिनोजा ने विकारों को द्रव्य आश्रित माना है।

---

[1] Ethics, Part-I, Def. 5.

[2] A mode is empirically conditioned by other finite modes and transcendentally conditioned by the infinite. Further, that modes are the modifications of substance does mean that substance has transformed itself into modes or that they are the parts of substance; because by that expression spinoza means only the modification of attributes......................"
Spinoza in the light of the Vedanta
Modes Page 209

- R. K. Tripathi.

स्पिनोजा के अनुसार पर्याय परतन्त्र एव अनेक हैं। इनकी सत्ता द्रव्य पर ही आश्रित है। द्रव्य समुद्र हैं एव पर्याय तरंगे है। द्रव्य एक एव अद्वितीय है किन्तु पर्याय अनेक है। द्रव्य नित्य, असीम, पूर्ण एव उद्‌भव और विनाश रहित सामान्य है। इसके विपरीत पर्याय अनित्य, सीमित, अपूर्ण उत्पन्न धर्मी एवं विनाशशील है। इस प्रकार स्पिनोजा का द्रव्य शंकर के निर्विकारी एव अपरिणामी ब्रह्म से भिन्न तथा रामानुज के परिणामी ब्रह्म के कुछ निकट है। किन्तु उल्लेखनीय है कि स्पिनोजा को सृष्टि के उद्‌भव स्थिति एव प्रलय की अवस्थाएँ भारतीय दार्शनिको के समान स्वीकार नही है। उनके अनुसार द्रव्य या ईश्वर नित्य विकारवान अर्थात् सृष्टि करने की अवस्था मे स्वभावतः रहता है। जिस प्रकार सूर्य से किरणों का निकलना एवं अग्नि में ज्वलनशीलता स्वाभाविक है, उसी प्रकार द्रव्य अथवा ईश्वर से पर्यायो का होना स्वभावत· है।

स्पिनोजा पर्यायों के स्वरूप पर भी दो प्रकार से विचार करते हैं। एक दृष्टि से पर्याय परिवर्तनशील एव उत्पन्नधर्मी है।ये कुछ देर तक बने रहते है एव अन्ततः नष्ट हो जाते हैं। इस दृष्टि से पर्याय साक्षात् द्रव्य से सम्बन्धित एव सान्त तथा अनित्य है। इसके अतिरिक्त ईश्वर के शरीर के रूप में पर्याय असीम एव नित्य है। चेतना के रूप मे बुद्धि एव संकल्प अनन्त एवं नित्य पर्याय

है किन्तु विविध जीवो के रूप में सान्त एवं अनित्य है। इसी प्रकार विस्तार के रूप में गति तथा स्थिति पर्याय अनन्त एव नित्य है किन्तु अनेक जड पदार्थो के रूप मे गति तथा स्थिति पर्याय सान्त एव अनित्य हैं। इस प्रकार स्पिनोजा के अनुसार पर्याय अनित्य है। ये ईश्वर से नि·सरित होने अथवा उसमें विलीन होने की उत्कंठा आदि लक्षणो के कारण भी नित्य नही है। अस्तु पर्याय वस्तुत· पर्याय के रूप में अनित्य है।[1] पर्याय के इन दोनों रूपो मे कोई अन्तर्विरोध नही है क्योकि इन दोनों व्यष्टि एवं समष्टि का आधार द्रव्य ही है। प्रत्येक पर्याय वास्तविक है क्योंकि यह एक ही द्रव्य का प्रकाश है। द्रव्य अथवा ईश्वर अस्तित्वयुक्त वस्तुओ का केवल कारण ही नही है अपितु उनके शाश्वत् रूप से अस्तित्व मे बने रहने का आधार भी है।[2] प्रत्येक पर्याय का अन्तिम कारण ईश्वर ही है। प्रत्येक सीमित और सोपाधिक वस्तु अन्य सोपाधिक एवं अस्तित्वयुक्त वस्तुओं के द्वारा ही सीमित है। यह ईश्वर के किसी गुण के निरपेक्ष स्वरूप के

---

[1] Having now considered the nature of mode it ought to be easy for us to say that the modes as modes are unreal. Neither their necessary emanation from God nor the presence of conatus in them nor any other characteristc of them implies their reality; mere appearance in time is not reality.
Spinoza in the light of the Vedanta-
Modes" P. 215 - R. K. Tripathi

[2] Ethics- Part I, Prop XX, IV

द्वारा उत्पन्न नही की जा सकती है।[1] स्पिनोजा के अनुसार काल सापेक्ष कारणता केवल पर्यायो पर आधारित होती है। यद्यपि द्रव्य को नित्य कहा गया है तथापि उसके लिए काल परक सबध असगत है। नित्यत्व की व्याख्या काल के द्वारा नही की जा सकती है और न काल के साथ इसका कोई सम्बन्ध हो सकता है।[2]

स्पिनोजा के अनुसार "प्रत्येक पर्याय द्रव्य है।" उनका यह विचार दर्शन जगत में कटु आलोचना का विषय रहा है। केयर्ड ने आरोप लगाया है कि स्पिनोजा के दर्शन का प्रारम्भ एक अद्वितीय द्रव्य से हुआ एवं इसका अन्त पर्यायों की अनेकता मे हुआ।

इस आरोप का कारण स्पिनोजा के दर्शन मे मान्य उनकी दो दृष्टियो के भेद की उपेक्षा से है। उनके अनुसार नित्य दृष्टि से केवल द्रव्य की ही सत्ता है। अनित्य दृष्टि से पर्यायों के रूप मे अनेक जीवात्माओं एवं वस्तुओ की अनेकता दिखाई देती है।[3]

---

[1] Ethics- Part I, Prop XXVIII

[2] Ethics -V-I

[3] "The ideas of particular things or of modes, that do not exist must be comprehended in the infinite idea of God, in the same way as the formal essence of particular things as modes are contained in the attributes of God." Ethics II Prop. 8

इसके अतिरिक्त हेगल ने भी स्पिनोजा की दार्शनिक विचारधाराओ की आलोचना की है। उनके अनुसार "स्पिनोजा का ईश्वर उस सिह की गुफा के समान है, जहॉ अनेक जानवरो के अन्दर जाने के पद चिन्ह तो दिखाई पडते है किन्तु उनके बाहर आने का कोई पदचिन्ह नही दिखाई देता।" इस आलोचना के अनुसार पर्यायों के द्वारा द्रव्य का अस्तित्व तो सिद्ध होता है किन्तु द्रव्य को स्वीकार कर लेने पर पर्यायो का अस्तित्व नही सिद्ध होता है। इस प्रकार हेगल का कथन है कि स्पिनोजा का द्रव्य सर्वग्रासी है किन्तु स्पिनोजा की दार्शनिक विचारधारओ पर गभीरता से चितन करने पर विदित होता है कि हेगल द्वारा की गई यह आलोचना उनके पूर्वाग्रह के कारण है। वस्तुत. हेगल निर्विशिष्ट एव विशुद्ध अभेद को वास्तविक सत्ता के रूप मे न स्वीकार कर इसे एक विकृत मानसिकता की उपज मानते है। हेगल के अनुसार शकर एव स्पिनोजा द्वारा प्रतिपादित निर्विशिष्ट चैतन्य एव विशुद्ध अभेद रूप सत्ता कोरी कल्पना है किन्तु हेगल का यह आक्षेप अतिशयोक्तिपूर्ण एव स्पिनोजा की दार्शनिक विचारधाराओं की वास्तविकता के प्रतिकूल है। स्पिनोजा के अनुसार द्रव्य स्वभावतः क्रियाशील है एवं इससे पर्यायो की उत्पत्ति स्वभावत· होती रहती है। इस प्रकार स्पिनोजा अद्वैतवेदान्तियों की तरह पर्यायों को न तो भ्रामक अथवा

मिथ्या मानते है एव न इसे द्वैतवादी के समान निरपेक्ष सत् के समान अन्तिम रूप से सत् ही मानते है। उनके अनुसार व्यावहारिक अथवा अनित्य दृष्टि से ही पर्यायो की अनेकता है किन्तु पारमार्थिक एव नित्य दृष्टि से केवल द्रव्य की ही सत्ता है। अस्तु द्रव्य तथा पर्यायों का अभिधान करते समय "द्रव्य एव पर्याय" न कहकर "द्रव्य के पर्याय" कहना समीचीन होगा।[1] यह ही स्पिनोजा के दर्शन की उत्कृष्टता है जो उसे विश्व के एक महान दार्शनिक के रूप में प्रतिष्ठापित कर सकी है।

इस प्रकार स्पिनोजा की दार्शनिक विचारधाराओ विशेषकर द्रव्य, गुण एवं पर्याय पर संक्षेपतः प्रकाश डालने के पश्चात् उनकी ईश्वर एवं सृष्टि सम्बन्धी विचारधारा पर भी विहगम दृष्टिपात करना समीचीन होगा।

---

[1] Thus a mode is absolutely dependent both in its essence as well as existence; it is a complete antithesis of subsatnce which is self-existent and self-conceived. The modes are the modification of substance and not something over and above substance; hence it would be better to speak of "Modes of substance" rather than " modes and substance."
spinoza in the light of the
Vedanta-Modes-P. 208-209

- R. K. Tripathi.

ईश्वर (द्रव्य) एवं सृष्टि :–

स्पिनोजा ने एक मात्र ईश्वर को ही द्रव्य माना है। चित् एव अचित् स्वतत्र न होकर ईश्वर के ही गुण है। ईश्वर या द्रव्य सभी भेदो से रहित है। यह ईश्वर निरपेक्ष है एव सभी प्रकार के सजातीय, विजातीय एव स्वगत भेदो से रहित है। इससे स्पष्ट है कि है कि स्पिनोजा का ईश्वर अखण्ड एव अनन्त है।[1] स्पिनोजा का ईश्वर धार्मिको के ईश्वर से पृथक है। धर्म के ईश्वर सगुण पुरूष विशेष या पुरूषोत्तम है। देकार्त के भी ईश्वर धर्म के ईश्वर है। डेकार्ट के ईश्वर सृष्टिकर्ता एव जगनियन्ता है तथा वे सृष्टि के ऊपर दिव्यलोक मे निवास करते है। सृष्टि उनके बाहर है एवं ईश्वर का सृष्टि के साथ कोई आन्तर सम्बन्ध नही है। इसके विपरीत स्पिनोजा के ईश्वर सृष्टि में

---

[1] So the inmediate cause of the universe is God as conceived through the attributes or the immediate modifications thereof. God as qualified by the attributes is conscious like the Vedantic Isvara. In this sense conscious causality has to be admitted behind the appearance of the finite things.
spinoza in the light of the Vedanta-Substance. Page 152
- R. K. Tripathi

अन्तर्यामी है। सृष्टि उनके बाहर नहीं उनके भीतर हैं।[1] वे सृष्टि में है एव सृष्टि उनमे है। यह सृष्टि ईश्वर की शरीर है एवं ईश्वर इस सृष्टि के प्राण हैं।

स्पिनोजा के अनुसार ईश्वर एव सृष्टि मे अभेद सम्बन्ध है। ईश्वर एव सृष्टि का सम्बन्ध तादात्म्य संबध है। ईश्वर सृष्टि के कारण है एवं सृष्टि कार्य है। अद्वैतवेदान्त की भॉति स्पिनोजा के अनुसार भी ईश्वर एव सृष्टि में तादात्म्य सम्बन्ध है। कारण ही कार्य के रूप मे प्रतीत होता है। कारण ही एकमात्र सत् है एव कारण से ही कार्य की सत्ता है। इस प्रकार स्पिनोजा ने कारण शब्द का प्रयोग अधिष्ठान के रूप मे किया है। पुत्र का कारण पिता है एव घट का कारण कुभकार है–इस रूप मे स्पिनोजा का ईश्वर सृष्टि का कारण नही है। सृष्टि ईश्वर से पृथक सिद्ध नही है। सृष्टि ईश्वर की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है किन्तु यह सृष्टि व्यक्त होकर भी उसके बाहर नही है। सब कुछ ईश्वर से प्रतिष्ठित है। ईश्वर से सृष्टि किसी इच्छावश नही अपितु स्वभावत सृजित है क्योकि ईश्वर आप्तकाम है, उसमे किसी प्रकार की इच्छा नही है। जिस प्रकार सूर्य से उसकी किरणे एवं समुद्र से उसकी तरंगें

---

[1] Ethics I. Definition 7.

स्वभावतः निकलकर उसमें स्थित एव समाहित है उसी प्रकार ईश्वर से सृष्टि की अभिव्यक्ति स्वाभाविक एव उसी मे स्थित है।

मध्यकालीन दार्शनिक सन्त आगस्टाइन एव थामस एक्विनास की दैवी चमत्कार पर आधारित जगत् की अवधारणा एवं यथोक्त डेकार्ट की सृष्टिकर्ता के रूप मे सृष्टि से अलग रहकर सृष्टि रचना की विचारधारा से स्पिनोजा का सृष्टि सम्बन्धी विचार भिन्न है। स्पिनोजा का दर्शन सर्वेश्वरवाद (Pantheism) कहा जाता है। उनके अनुसार "सब कुछ ईश्वरमय है और ईश्वर ही सब कुछ है।" ईश्वर एव सृष्टि मे अभेद सम्बन्ध है। यथोक्त ईश्वर (द्रव्य) सभी भेदो से रहित है। स्पिनोजा का ईश्वर (द्रव्य) शकर के ब्रह्म के समान सभी सजातीय, विजातीय एव स्वगत भेदों से रहित है। कुछ दार्शनिक ईश्वर में सजातीय एव विजातीय भेद मानते है। जैसे द्वैतवादी– मध्वाचार्य आदि। इसके विपरीत कुछ दार्शनिक जैसे रामानुजाचार्य आदि स्वगत भेद मानते हैं। किन्तु स्पिनोजा इन भेदो को नही मानते। उनकी सृष्टि ईश्वर से अभिन्न है। अस्तु स्पिनोजा के अनुसार सम्पूर्ण सृष्टि एव इसके प्रत्येक घटक मे ईश्वर ही है। सृष्टि की सत्ता ईश्वर से परे नही है। सृष्टि ईश्वर से निर्गमित नही है क्योकि ईश्वर के बाहर कुछ नही है। स्पिनोजा ईश्वर एव सृष्टि के सम्बन्ध की तार्किक

व्याख्या करता है। उनके अनुसार सृष्टि एवं ईश्वर में तार्किक सम्बन्ध है। सृष्टि ईश्वर की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है।

ईश्वर से सृष्टि की रचना यथोक्त कुम्भकार से घट के समान नहीं है। स्पिनोजा का ईश्वर सृष्टि का निमित्त एव उपादान दोनो कारण है। सृष्टि रचना मे उसका कोई स्वार्थ नही अपितु यह यथोक्त स्वभावत: है।[1] इस प्रकार स्पिनोजा की सृष्टि मीमासा रामानुजाचार्य के ब्रह्म की परिणामवाद के निकट एव शकर के विवर्तवाद से भिन्न है। स्पिनोजा शकर के समान सृष्टि को विवर्त या मिथ्या नही मानते है। उनके अनुसार सृष्टि में चेतन एवं अचेतन दोनों प्रकार की वस्तुएँ सम्मिलित है। स्पिनोजा का ईश्वर तीन रूपों वाला है –

1. कर्म प्रकृति (Natura Naturata) :-

यह ईश्वर या द्रव्य का विश्वरूप है। यह वस्तुओ की अनेकता के कार्यो का एक रूप है। इसे द्रव्य के पर्यायो या विकारो का जगत् कहा जा

---

[1] Ethics II, Preface to Part IV

सकता है। इस स्तर पर विभिन्न वस्तुओं मे भेद पाया जाता है। यह ईश्वर का सबसे निम्न रूप है।

2. कारण–प्रकृति (Natura Naturans) :-

जहाँ तक ईश्वर जगत् का स्वतन्त्र कारण है, उसे विश्वात्मा कहा जाता है। यह चेतन और अचेतन जगत की आत्मा है। अस्तु इसे ईश्वर का विश्वात्म रूप कहा जाता है। इसे सक्रिय प्रकृति भी कहा गया है। यह बुद्धि का स्तर है। यहाँ पर ईश्वर को गुणो की दृष्टि से देखा जाता है। इस प्रकार स्वतन्त्र कारण अथवा सक्रिय प्रकृति की दृष्टि से ईश्वर को विश्वात्मा[1] तथा जगत् के रूप मे प्रकट निष्क्रिय तत्व को विश्व रूप कहा गया है।

3. पर रूप (Ens Absolutum Indeterminatum) :-

शरीर और आत्मा के सीमित रूप में प्रतीत होने वाले ईश्वर का अनिर्वचनीय एव निर्विशिष्ट तत्व उसका (ईश्वर का) पर रूप है। इसका ज्ञान

---

[1] God is as desireless or free as he is causa sui (Svayambhu). He acts from "free necessity" because "that thing is called free, which exists solely by the necessity of its own nature and of which the action is determined by itself alone." and that thing is necessary whose "non-existence would imply a contradiction". God's action is thus both free and necessary.
Spinoza in the light of the Vedanta-Substance. Page 147 - R. K. Tripath.

इन्द्रियानुभव एवं सश्लेषणात्मक बुद्धि द्वारा नहीं अपितु प्रज्ञा (Intuition) द्वारा होता है। यह ईश्वर का सर्वोच्च रूप है।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि स्पिनोजा के दर्शन मे द्रव्य, ईश्वर और प्रकृति इन तीनो पदो का प्रयोग एकात्मक है। स्पिनोजा का द्रव्य सत् होने के साथ–साथ शुभ भी है क्योकि यह जीवन का परम श्रेय है। इसके स्वरूप का साक्षात्कार करना ही मनुष्य की सच्ची स्वतन्त्रता और बन्धनो से मुक्ति है। इसके अतिरिक्त स्पिनोजा का द्रव्य एक तत्वमीमासीय सम्प्रत्यय है एव इसके द्वारा जगत् की विभिन्न वस्तुओ की व्याख्या की जाती है। उनके दर्शन मे द्रव्य से अन्य सिद्धान्तो का भी तार्किक निगमन किया गया है। इसकी तुलना साख्य की प्रकृति से भी की जा सकती है जिसके द्वारा महत् ,अहकार, मन, तन्मात्रायें एव पंचमहाभूत आदि तर्कत विकसित होते है किन्तु साख्य दर्शन प्रकृति के अतिरिक्त पुरूष की सत्ता स्वीकार करके द्वैतवाद के दलदल मे फॅस गया है। स्पिनोजा इसके विपरीत "अचेतन विस्तार" एव "चेतन विचार" को द्रव्य के अन्तर्गत सम्मिलित करके द्वैतवाद की समस्या का अतिक्रमण कर दिया है।[1]

---

[1] The mind and the body are one and the same thing considered first under the attribute of thought and second under the attribute of extension. Ethics III Prop 2

इस प्रकार स्पिनोजा ने अपने ईश्वर (द्रव्य) के द्वारा जहॉ एक ओर उसको निर्गुण एव अनिर्वचनीय रूप मे "नेति–नेति" कहा है, वही दूसरी ओर उसको सर्वेश्वर का रूप प्रदान करते हुए परम शुभ एव जीवन का परम श्रेय भी बताया है। जहॉ अपने दार्शनिक ग्रन्थ को तत्वमीमासीय विवेचन के कारण "नीतिशास्त्र" (Ethics) से अभिहित क्रिया वही अपने बौद्धिक प्रेम को भी प्रदर्शित करने मे कोई कोर कसर न उठा रखी है। जहॉ व्यावहारिक दृष्टि से उसे (ईश्वर को) अनन्तगुण सम्पन्न माना वही पारमार्थिक दृष्टि से सम्पूर्ण सृष्टि को उसी मे समाहित कर द्वैतवाद की भी आहुति दे दी है। इस प्रकार स्पिनोजा ने अपने ईश्वर में मानवारोपित गुणो एव मूल्यो का निषेध करके तथा उसको (ईश्वर को) मानवोचित दोषों एव अपूर्णताओ से मुक्त करके एक सार्वभौम धर्म को ठोस आधार प्रदान करने का स्तुत्य प्रयास किया। दर्शन शास्त्र एवं मानव उनके इस प्रयास का सदा ऋणी रहेगा।

अध्याय 4

शंकर एवं स्पिनोजा के परमसत् ब्रह्म एवं द्रव्य की तुलनात्मक विवेचना :–

शकर एव स्पिनोजा के क्रमश ब्रह्म एवं द्रव्य के बारे मे पूर्व अध्यायो मे सक्षेपत. विचार किया जा चुका है। दोनो दार्शनिको के परम सत् के बारे मे यथोक्त विवरण से स्पष्ट है कि शंकर का ब्रह्म एव स्पिनोजा का द्रव्य (ईश्वर) थोडी विषमताओं के बावजूद बहुत कुछ माने में समान हे।

शकर एक मात्र ब्रह्म को ही परम सत् मानते है। उनका दर्शन अद्वैतवादी है जिसके अनुसार "एकोब्रह्म द्वितीयोनास्ति" अर्थात् एकमात्र ब्रह्म ही पारमार्थिक सत् है, अन्य दूसरे की सत्ता नही है। स्पिनोजा भी इसी प्रकार मात्र द्रव्य की ही एकमात्र सत्ता मानते है। दोनो ने परम सत् को अद्वितीय असीम, निर्गुण, निरपेक्ष, निर्विकार आदि रूपो में अभिहित किया है।

शकर जहॉ अपने ब्रह्म को अद्वितीय, निर्विकार एव अनिर्वचनीय बताया है, वही इसके साकार रूप का भी विधिवत अभिधान किया है। जैसा कि उन्होंने कहा है कि जन्म रहित एव अक्षीण ज्ञान शक्ति स्वभाव वाला एव सम्पूर्ण

भूतो का नियमन करने वाला ब्रह्म अपनी माया प्रकृति को अपने वश मे रखकर केवल अपनी लीला से ही शरीर वाला सा जन्म लिया हुआ सा हो जाता है।[1] शकर का ब्रह्म व्यावहारिक जगत मे साधुओं की रक्षा के लिए तथा दुष्टों का नाश करने के लिए युग–युग मे प्रकट हुआ करता है।[2]

शकर का ब्रह्म–परम ब्रह्म, परमात्मा, परमधाम, परम तेज और परम पावन भी है। वह देवलोक मे रहने वाला अलौकिक पुरूष भी है। वह आदि देव भी है। वह अजन्मा और व्यापक भी है।[3] उनका ब्रह्म चर अचर सभी भूत प्राणियो में व्याप्त है। उसकी सत्ता से रहित कुछ भी नही है। सब कुछ उसका ही स्वरूप है।[4]

---

[1] अज अपि जन्मरहित सन् तथा अव्ययात्मा . . देहवान् इव भवामि जात इव
आत्ममायया आत्मनो मायया न परमार्थतो लोकवत्।।
श्रीमद्भगवद्गीता शांकर भाष्य–4/6

[2] धर्मस्य सम्यक् स्थापन तदर्थ सभवामि युगे–युगे प्रतियुगम्।
श्रीमद्भगवद्गीता शांकर भाष्य–4/8

[3] परं ब्रह्म परमात्मा . . .. . आदौ भव देवम् अज विभु विभवनशीलम्।।
श्रीमद्भगवद् गीता शांकर भाष्य–१०/१२

[4] न तद् अस्ति भूत चराचर चरम् अचर वा मया विना यत् स्याद् . ।।
श्रीमद्भगवद् गीता शाकर भाष्य 10/39

अद्वैत वेदान्त के प्रबल समर्थक शकर का ब्रह्म व्यावहारिक दृष्टि से धार्मिको के ईश्वर के समान अपने भक्तो की रक्षा करने वाला है। इस तरह का अभिधान करते हुए शकर ने गीता–भाष्य मे कहा है "मेरे लिए (परम सत् के लिए) किये जाने वाले कर्म मत्कर्म है। अस्तु उनको करने वाला मेरे लिए कर्म करने वाला है। ऐसा जो मुझ परमेश्वर के लिए कर्म करने वाला है तथा जो मेरे ही परायण है, तथा जो धन, पुत्र, मित्र, स्त्री और बन्धु वर्ग मे प्रीति एव स्नेह से रहित है" ऐसा जो मेरा भक्त है, हे पाण्डव । वह मुझे पाता है। अर्थात् मै ही उसकी परम गति हूॅ।[1] इसी प्रकार शंकर के ब्रह्म सम्बन्धी विचारो पर दृष्टिपात करने पर विदित होता है कि जहॉ शकर का ब्रह्म निर्लिप्त, निराकार अक्षर, अव्यक्त है, वहीं वह साकार रूप में ईश्वर का रूप लेकर अनेक लीलाओ का करने वाला भी है। इस प्रकार शंकर का अद्वैत ब्रह्म ही व्यावहारिक जगत् मे अनेक प्रपचो का कारण है किन्तु शकर के लिए जगत ब्रह्म से अलग स्वीकार्य नही है। शकर जगत् को परिणामवादियों की तरह ब्रह्म से पृथक कोई अन्य उपलब्धि (यथा दूध से दही अन्य उपलब्धि है) नही मानते

---

[1] मत्कर्मकृद् मदर्थ कर्म मत्कर्म तत्करोति इति मत्कर्मकृत्। . . .य ईदृशोमद्भक्त स माम् एति अहम् एव तस्य परा गति न अन्या गति काचिद्भवति . . .. श्रीमद्भगवद् गीता शाकर भाष्य 11/55

है। वे विवर्तवाद के समर्थक है। उनके अनुसार यह जगत् ब्रह्म का विवर्त मात्र हे। मृत्तिका से निर्मित घट मृत्तिका से पृथक एक अन्य उपलब्धि है। शंकर के अनुसार दूध से दही से अथवा घट मृत्तिका से पृथक अन्य कोई चीज नही है। अगर दही को दूध से पृथक माने तो क्या वह पानी से निर्मित हो सकता है? नही। ऐसे मे दही दूध का ही रूप है। शकर को यही स्वीकार है। उनके अनुसार जब तक पारमार्थिक ज्ञान की प्राप्ति नही होती तभी तक जगत् की सत्ता है। जब तक ब्रह्म का ज्ञान नही होता तभी तक जगत् की लीलायें सत प्रतीत होती है। ब्रह्म का ज्ञान होते ही व्यावहारिक जगत का अनुभव किया जाने वाला जगत भ्रम ही प्रतीत होता है।

इस व्यावहारिक जगत् का कारण भी जैसा कि पूर्व पृष्ठो पर वर्णित है, अन्य न होकर ब्रह्म ही है। कारण भी दो प्रकार का होता है। प्रथम निमित्त कारण एव दूसरा उपादान कारण। जैसे–घट का निमित्त कारण कुम्भकार एव उपादान का कारण मिट्टी है किन्तु शकर इस प्रकार के दो कारणो को नही मानता। वे ब्रह्म के अतिरिक्त प्रकृति की सत्ता नही स्वीकारते क्योकि ऐसा मानना श्रुतियो के विपरीत होगा।[1] शकर के अनुसार केवल

---

[1] येनाश्रुत श्रुतं भवत्यमतं मतमभिज्ञात विज्ञातम् –छान्दोग्य० 6/1/2

व्यावहारिक दृष्टि से उपादान कारण से निर्मित वस्तु अलग प्रतीत होती है। जगत के सम्बन्ध मे ब्रह्म ही उपादान कारण भी है।[1]

लौकिक व्यवहार मे भी देखा जाता है कि जिस चीज के द्वारा किसी चीज का निर्माण होता है, नष्ट होने के पश्चात् वह अपने मूल कारण मे ही प्राय परिवर्तित हो जाती है। ठीक इसी प्रकार यह जगत् भी उपादान कारण रूप ब्रह्म मे वास्तविक ज्ञान प्राप्त होने पर समाहित हो जाता है। इस प्रकार ब्रह्म ही इस जगत् का निमित्त कारण के साथ–साथ उपादान कारण भी है एव उसकी ही पारमार्थिक सत्ता है। शकर का कथन है कि वेदान्त की इस वास्तविकता की पुष्टि मनीषियो ने भी की है।[2]

शकर का यह जगत् जब ब्रह्म में अपनी समस्त विभिन्नताओ सहित विलीन हो जाता है, तब पुन इस जगत का प्रश्न ही नही उठेगा ––

---

[1] तस्मादधिष्ठानन्तरराभावादात्मन कर्त्तृत्वमुपादा नान्तराभावाच्च प्रकृतितत्वम्।
ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य1/4/23

[2] अत्रोक्त वेदान्तार्थ सम्प्रदायविद्भिराचार्य. . ..अनादिमाययासुप्तो यदा जीव प्रबुध्यते। अजमनिद्रमस्वप्नमद्वेतमवबुध्यतेतदा।
माण्डूक्यो० गौड० कारिका 1/16

ऐसा कुछ विरोधियो का कथन है। इस सबंध मे शकर का मत है कि अज्ञान के नष्ट होने पर प्रलयावस्था मे जगत् ब्रह्म मे विलीन हो जाता है किन्तु अज्ञान के पूर्णतया नष्ट न होने के कारण एक प्रकार से उसकी विभिन्नता बनी ही रहती है। शकर का कथन है कि इसकी पुष्टि श्रुतियो से भी होती है।[1]

इस प्रकार शकर के अनुसार विलीनीकरण होने पर भी जीवन की अपनी विभिन्नताये एक प्रकार से बनी रहने के कारण जगत् के आरम्भ मे वे पुनः पूर्ववत् उत्पन्न होती है।[2] किन्तु ये सब वस्तुयें ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नहीं है। ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी की सत्ता नहीं है। नानात्मक जगत् की ब्रह्म के अतिरिक्त सत्ता नही है।[3]

---

[1] इमा सर्वा प्रजा सतिसपद्य न विदु: सति सपद्याम इति त इह व्याघ्रे वा सिहो वा वृको वा वराहो वा कीटो वा पतंगो वा दशो वा मशको वा यद् यद् भवन्ति तदाभवन्ति।

—छान्दो० 6/9/2,3

[2] यद्‌बाह्यविभागेऽपि परमात्मनि मिथ्याज्ञान प्रतिबद्धो विभागव्यवहार स्वप्नवद् व्याहृत स्थितोदृश्यते एवमितावपि मिथ्याज्ञान प्रतिबद्धैव विभागशक्तिरनुभास्यते।

—ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य–2/1/9

[3] यतो वाचारम्भण विकारो नामधेयं वाचेव केवलास्तीत्याख्यते। विकारो घट. शराव उदंचन चेति। न तु वस्तु वृत्तेन विकारो नाम कश्चिदस्ति।
नामधेय मात्र हि एतदनृत मृत्तिकेत्येव सत्यमिति।

– ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य 2/1/1

स्पिनोजा का भी द्रव्य एकमात्र परम सत् है। उसके अतिरिक्त अन्य किसी की सत्ता नही है लेकिन सृष्टि के विभिन्न जड पदार्थो को भी उसने अपने परम द्रव्य पर आश्रित मानकर उनकी भी व्यावहारिक सत्ता को स्वीकारा है।[1] स्पिनोजा अपने द्रव्य से ही सृष्टि की रचना मानता है और पूरे सृष्टि को द्रव्यमय (ईश्वरमय) मानकर सर्वेश्वरवाद की घोषणा करता है। इस प्रकार शकर के समान स्पिनोजा भी एकमात्र द्रव्य (ईश्वर) को ही परम सत् मानते है। उनकी सृष्टि पूर्णतया उसी पर आधारित है। यथोक्त द्रव्य अनेक गुणो से युक्त है। मानव की पहुॅच इन अनेक गुणो में से केवल दो–चेतन एवं विस्तार, तक ही है। इन दोनो गुणो की अपनी पृथक सत्ता नही है। स्पिनोजा गुणो को एक विशेष अर्थ मे प्रयुक्त करता है। उनके अनुसार द्रव्य गुणो के ऊपर अपने अस्तित्व के लिए निर्भर नही है। गुण बुद्धि द्वारा निर्धारित द्रव्य के धर्म है। ऐसे मे गुणो को द्रव्य की उपाधि के रूप मे समझा जा सकता है। उपाधि द्रव्य के अन्तस्थ तत्व को निर्धारित नही करती, यह केवल एक विशिष्ट रूप मे द्रव्य को संकेतिक करती है। उपाधि केवल द्रव्य की सत्ता को सकेतिक

---

[1] The absolute being the sole cause, the world may be spoken of as part of or as existıng ın God.------------------Sponoza in the light of the Vedanta Substance, P 127.
- R.K. Tripathi

करती है।[1] द्रव्य अपने अस्तित्व के लिए उपाधियो पर निर्भर नही करता। स्पिनजो के द्रव्य के गुणों को वेदान्त के ब्रह्म के तटस्थ लक्षण के रूप में जाना जा सकता है। इस प्रकार गुणो को द्रव्य के स्वरूप लक्षण या द्रव्य के वास्तविक तत्व (Properties) से इतर मानना चाहिए। द्रव्य के वास्तविक तत्व उसके अद्वितीय, अनन्त, असीमित, आदि रूप को बताते है।[2]

इस प्रकार हम देखते है कि शकर एव स्पिनोजा दोनो अपने ब्रह्म एव द्रव्य को पारमार्थिक रूप मे निर्गुण, निर्विकार असीमित, सत्य एव नित्य मानते है तथा दोनो ने व्यावहारिक रूप में इनसे ही साकार, अनित्य, उत्पन्न धर्मी, अथवा समस्त प्रपचों की अभिव्यक्ति को भी बताया है। यद्यपि ऐसा

---

[1] The attributes therefore are not in the being of substance; they are super-imposed, and hence they may be best understood as Upadhis of substance.
spinoza in the light of the Vedanta.
Substance P. 89
- R. K. Tripathi.

[2] In this sense the attributes may be compared to the Tatastha laksana of Brahman. In any case, the attributes must be distinguished from the Svarupalaksanas or the properties of substance.
Spinoza in the light of the Vedanta.
Substance P. 89
- R K. Tripathi

अभिधान करने मे दोनो के भावो मे बहुत कुछ अन्तर है। फिर भी अभिव्यक्ति एवं भाव मे समानता भी बहुत कुछ है।

शकर का निराकार ब्रह्म जहॉ एक ओर निर्विकार एवं निर्लेप है और उसकी ही एकमात्र सत्ता है, वही दूसरी ओर नाना रूप वाले जगत् के होते हुये उसके अद्वैत के दर्शन की पुष्टि कैसे सम्भव है? इसी प्रकार स्पिनोजा का द्रव्य (ईश्वर) जहॉ एक ओर निर्गुण, निर्विकार, अनिर्वचनीय और एकमात्र सत है वही दूसरी ओर नाना प्रपचो से युक्त साकार एवं उत्पन्न धर्मी जगत् के होते हुए स्पिनोजा के अद्वैत दर्शन की भी पुष्टि कैसे? इन शकाओ का निराकरण भी दोनो दार्शनिको ने लगभग एक समान किया है। शंकर अपने ब्रह्म की सत्ता के बारे मे यथोक्त तीन प्रकार से अभिधान किया है। जो निम्नवत् है –

(i) पारमार्थिक दृष्टि

(ii) व्यावहारिक दृष्टि

(iii) प्रातिभासिक दृष्टि

शकर के ब्रह्म आदि के बारे मे विचार करते समय पूर्व अध्याय मे यथा स्थान इस पर विधिवत् विचार किया जा चुका है जिससे स्पष्ट है कि अन्तत पारमार्थिक दृष्टि से एकमात्र ब्रह्म की ही सत्ता है और वह ही अद्वैत के रूप मे पारमार्थिक सत् है।

स्पिनोजा ने भी इसी प्रकार ज्ञान की निम्न तीन अवस्थाओं का उल्लेख किया है

(i) प्रातिभ ज्ञान अथवा प्रज्ञात्मक ज्ञान

(ii) बौद्धिक ज्ञान

(iii) काल्पनिक ज्ञान

स्पिनोजा के भी काल्पनिक ज्ञान एव बौद्धिक ज्ञान के स्तर पर विश्व रूप एव विश्वात्म रूप का ज्ञान होता है और इस स्तर पर नित्य एव निर्विकार तथा अनित्य एव उत्पन्न धर्मी के द्वैतवाद के विरोध की समस्या उठती है किन्तु स्पिनोजा के प्रज्ञात्मक ज्ञान, जो ज्ञान का सर्वोच्च स्तर है, की अवस्था मे निर्विशिष्ट, नित्य एव निर्विकार रूप द्रव्य (ईश्वर) का ही साक्षात्कार होता है। इस प्रकार स्पिनोजा के दर्शन मे भी द्वैतवाद ज्ञान के सर्वोच्च स्तर पर समाप्त

हो जाता है एवं उनका द्रव्य (ईश्वर) ही एकमात्र अद्वैत रूप में प्रतिष्ठित होता है। इस प्रकार हम देखते है कि ज्ञान-मीमासा के क्षेत्र मे इन दोनों मे बहुत कुछ समानता है।

सृष्टि की रचना के बारे में शकर विवर्तवाद के समर्थक है। उनकी सृष्टि ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नही है। यद्यपि व्यावहारिक स्तर पर उसकी विधिवत् सत्ता है किन्तु अन्तत पारमार्थिक स्तर पर वह विवर्तमात्र है। स्पिनोजा भी सृष्टि को अपने द्रव्य (ईश्वर) से स्वभावत नि सरित मानता है एव रामानुजाचार्य के समान परिणामवाद का पोषक है। उनकी (स्पिनोजा की) सृष्टि द्रव्य से अलग न होकर उसी में है। द्रव्य उसके कण–कण मे व्याप्त है। इसीलिए पर्यायो को 'द्रव्य और पर्याय' न कहकर उसे 'द्रव्य का पर्याय' ही कहा जाना स्पिनोजा का अभीष्ट है।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि शकर का ब्रह्म एव स्पिनोजा का द्रव्य (ईश्वर) दोनो अद्वैत रूप मे उनके दर्शन मे प्रतिष्ठापित है किन्तु शकर का ब्रह्म अपने आप मे एकमात्र सत् है और उसके अतिरिक्त जगत् की अपनी मात्र व्यावहारिक सत्ता है और अन्नत यह (जगत्) मिथ्या या असत् ही है। इसके विपरीत स्पिनोजा का द्रव्य (ईश्वर) भी अद्वैत रूप में परम सत् है किन्तु

उनकी सृष्टि जो अनेक पर्यायो का रूप है मिथ्या अथवा असत् न होकर बहुत कुछ रामानुजाचार्य के समान चित् अचित् युक्त है।

अन्तत: शकर एव स्पिनोजा अद्वैत वेदान्त के पोषक है एव इन दोनो का ब्रह्म एव द्रव्य (ईश्वर) ही एकमात्र सत् है। यह अवश्य है कि दोनो ने अपने परम सत् का अभिधान अपने–अपने ढग से किया है। जिस प्रकार सभी धर्मावलम्बी एक ही परम सत् को मानते है किन्तु उस परम सत् का स्वरूप अपने–अपने अनुसार बताते है, जिस प्रकार विज्ञान भी अपने अनुसार परम् सत् का अभिधान करता है, जिस प्रकार अनेक दार्शनिक भी अपने विभिन्न दृष्टिकोणो से एक ही सत्ता का अभिधान करते है किन्तु मूलत वह परम सत् एक ही होता है।[1] उसका अभिधान चाहे ईश्वर के रूप मे, जड रूप मे, प्रकृति रूप मे, या आत्म रूप मे, चाहे जिस प्रकार किया जाय। इनके अपने–अपने विचारो के अनुसार उपर्युक्त सत्ता ही अनेक रूप में वर्णित होती है। इसी प्रकार शकर

---

[1] All religions are seen as approaches to a single truth, all philosophies as divergent view-point looking at different sides of a single reality, all sciences meet together in a supreme science For that which all our mind-knowledge and sense-knowledge and suprasensuous vision is seeking, is found most integrally in the unity of God and man and Nature and all that is in Nature

The Brahman, the Absolute in the spirit, the timeless self, the self possessing Time, Lord of Nature, creator and continent of the consmos and immanent in all existences, the soul from whom all souls derive and to whom they are drawn, thatis the Truth of Being as man's highest God-conception sees it

THE LIFE DIVINE GOD, MAN AND NATURE - SRI AUROBINDO

और स्पिनोजा ने मात्र एक परम सत् को स्वीकारते हुए जगत सबधी विचारो में यथोक्त कुछ भिन्नता रखते हुए ब्रह्म और द्रव्य के रूप मे अपने अद्वैत दर्शन की स्थापना की है। इनकी उपर्युक्त विवेचना से यह भी स्पष्ट है कि ये दोनो अपने अद्वैतवादी विचारधारा मे बहुत कुछ समान भी है। इन समानताओ को देखते हुए अगर स्पिनोजा को शंकर के रूप मे अवतरित पाश्चात्य दार्शनिक कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति एवं अयथावत न होगा।

अध्याय 5

शंकर एवं स्पिनोजा की बन्धन और मोक्ष सम्बन्धी विचारधारा की विवेचना :–

भौतिकवादी दार्शनिको तथा चार्वाक आदि को छोडकर प्राय सभी दार्शनिको ने जीवन को बन्धन युक्त माना है। बन्धन युक्त होने की स्थिति को दु:खमय एवं कष्टपूर्ण बताया है। संसार मे उत्पन्न सभी प्राणियो को नाना प्रकार की वासनादि क्रियाओं मे लिप्त होने के कारण क्लेश युक्त बताया गया है। इस क्लेश अथवा दु:ख का कारण सभी दार्शनिकों ने अपने अपने ढग से बताया है एवं प्राय सभी ने इसका कारण अज्ञान[1] एव अविद्या आदि बताया है और इसके कारण ही जीव के बन्धन युक्त होने की बात कही है तथा इस बन्धन से मुक्ति पाना ही अपने दर्शन का प्राय सभी ने लक्ष्य माना है। इसी क्रम मे सबने ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, जीव, जगत्, जड, चेतन आदि की अपने–अपने ढग से व्याख्या भी की है। शकर एव स्पिनोजा ने भी इस सम्बन्ध में अपने जो विचार व्यक्त

---

[1] . . बन्धकारणमविद्या इत्येतदप्युक्तमेव भवति.. ... . ..
बृ० उ० 4/4/6

किये है उस पर सक्षेप मे पूर्व पृष्ठो मे प्रकाश डाला जा चुका है तथा शंकर एवं स्पिनोजा के परम सत्–ब्रह्म एव द्रव्य, चित्, अचित् गुण, ईश्वर आदि पर भी विचार किया जा चुका है। इन पर विचार करने के पश्चात् अब शंकर और स्पिनोजा के सत् की व्याख्या के क्रम मे उससे सबधित उनके परम ध्येय बन्धन और मुक्ति पर भी प्रकाश डालना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि ये ही (बन्धन एव मोक्ष) मानव कल्याण हेतु दर्शन की महान देन है।

शंकर के अनुसार जैसा कि पूर्व पृष्ठों पर बताया जा चुका है कि ब्रह्म की एकमात्र पारमार्थिक सत् है। सम्पूर्ण ससार असत् या माया है। यह नितान्त ही तुच्छ है। प्रश्न उठता है कि फिर हमें इन सब की व्यावहारिक जीवन मे प्रतीति क्यो हो रही है? क्या चलते–फिरते जीव जन्तु, गगनचुम्बी चोटियो, अट्टालिकाओ, सृष्टि के अनेक सौन्दर्यपूर्ण प्रसाधन–ये सब क्या है? इन सब के सम्बन्ध मे शंकर का एकमात्र उत्तर यही है कि ये सब माया है। जिस प्रकार जादूगर हाथ मे बीज लेकर पेड उगा देता है। दर्शको के समक्ष अनेक वस्तुये प्रस्तुत कर देता है, किन्तु ये सब क्या है? माया।

शंकर के अनुसार जो आत्मा को प्राण का प्राण, श्रोत का श्रोत तथा मन का मन जानते हैं वे उस पुरातन ब्रह्म को जानते हैं।[1] अर्थात् उनके लिए ब्रह्म ही सब कुछ है। उसके अतिरिक्त और किसी अन्य की सत्ता नहीं है। उनके अनुसार आत्मा के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान ही मोक्ष है। गीता के समान शंकर के अनुसार भी यह आत्मा अच्छेद्य है, अदाह्य है, अक्लेद्य है, अशोष्य है, यह नित्य एवं सर्वगत है, यह स्थाणु है, यह अचल एवं सनातन है।[2]

यह आत्मा अव्यक्त एवं अक्षर हैं। यह जानना ही मोक्ष अथवा परम पद का पाना है।[3] इस प्रकार सर्वव्यापी, अकथनीय और सदा एक रस रहने वाले नित्य, अचल, निराकार, अविनाशी ब्रह्म को आत्मा जब एकीभाव, से जानती

---

[1] तं प्राणस्य प्राणम् तथा चक्षुषोऽपि चक्षुः
उत श्रोतस्यापि श्रोत्रम्_ ब्रह्मशक्त्यधिष्ठितानां हि चक्षुरादीनां दर्शनादिसामर्थ्यम्।
शांकर भाष्य बृ० उ० 4/4/18

[2] अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एवच।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ।।
श्रीमद्भगवद्गीता 2/24

[3] यः असौ अव्यक्तः अक्षर इति उक्तः तम् एव अक्षर संज्ञकम् अव्यक्तं भावम् आहुः परमां प्रकृष्टां गतिम्।
श्रीमद्भगवद्गीता शांकर भाष्य–8/81

हैं तथा ऐसी स्थिति मे अज्ञान से विमुख हो आत्मा जब अपने वास्तविक स्वरूप को जान लेती है तभी उसका मोक्ष सभव है।[1]

यह मोक्ष आत्मा द्वारा अपने वास्तविक स्वरूप का जानना ही है। यह मोक्ष कोई अप्राप्ति की प्राप्ति नहीं है। ज्ञान के द्वारा अज्ञान का आवरण समाप्त होते ही आत्मा अपने को ब्रह्मवत्, नित्य, कूटस्थ, शाश्वत् सर्वगत्, पारमार्थिक, सर्वविक्रियारहित, नित्य तृप्त, एव निरवयव समझने लगती है। इसीलिए शकर ने मोक्ष की व्याख्या भी कूटस्थ, नित्य, व्योमवत्, सर्वव्यापी, सर्वविक्रियारहित–आदि रूपो मे की है।[2]

विभिन्न कामना के वशीभूत होकर कर्म करने के कारण ही आत्मा अपने को जीववत् समझकर सांसारिक बन्धन मे पडती है। इस बन्धन से रहित होना ही मोक्ष है। इसकी प्राप्ति अज्ञान के नष्ट होने एवं निष्काम कर्म करने से

---

[1] न तु तेषा वक्तव्यं किचिद् मा ते प्राप्नुवन्ति इति। 'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्' इति हि उक्तम्।
श्रीमद्भगवद्गीता शाकर भाष्य–12/4

[2] इद तु पारमार्थिक, कूटस्थनित्य, व्योमवत्
सर्वव्यापी, सर्वविक्रियारहितं, नित्यतृप्तं,
निरवयव, स्वयंज्योति स्वभावम्, यत्र
धर्माधर्मौ सह कार्येण, कालत्रय च,
नोपावर्तेते, तदेतत् अशरीरत्व मोक्षाख्यम्। –ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 1/1/4

होती है। निष्काम कर्म में क्रिया सम्भव न होने के कारण कामना रहित होना ही मोक्ष है। कामना न करने वाले जीव की क्या गति है एव निष्काम कर्म करने वाला आप्तकाम कैसे होवे? इस सम्बन्ध मे शकर का मत है कि कामनारहित कर्म करना ही निष्काम है एव इस प्रकार निष्काम कर्म करने वाले की कामना का विषय आत्मा ही होती है अन्य कोई भौतिक पदार्थ नही।[1] इस प्रकार आत्मा ही जिसका अभीष्ट है, ऐसा निष्काम कर्म करने वाला ही आप्तकाम है। आत्मा ही अन्त. बाह्य रहित पूर्ण, प्रज्ञाघन एकरस है। ऊपर नीचे अथवा इधर–उधर आत्मा के अतिरिक्त कोई अन्य पदार्थ कामना के योग्य नहीं है। इस प्रकार आप्तकाम, निष्काम, अकाम एव कामना रहित होता है। इस कामना रहित पुरूष मे कर्मो का अभाव हो जाता है। कर्मो के अभाव के कारण उसके गमनागमन का कोई कारण नहीं रहता।[2] गमनागमन के कारण की अनुपस्थिति मे उसके योगादि प्राण उत्क्रमण नही करते एव आप्तकाम पुरूष ब्रह्मभूत या ब्रह्मरूप हो जाता है। यद्यपि वह शरीर धारी होता है किन्तु फिर भी उसके लिए ब्रह्म के

---

[1] न हि यस्य आत्मैव सर्व भवति,
तस्यानात्मा कामयितव्योऽस्ति। —बृहदा० शाकर भाष्य–4/4/6

[2] अकामस्य हि क्रियानुपपत्तेरकामयमानो मुच्यत एव।
—बृहदा० शाकर भाष्य–4/4/6

अतिरिक्त अन्य कुछ नही होता है।[1] इस प्रकार ब्रह्म का रूप प्राप्त हुआ पुरूष शरीर धारण करते हुए ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है न कि शरीर पात के पश्चात, जैसा कि कुछ लोगों का मत है।[2] अतएव जिस पुरुष की अविद्या पर आधारित समस्त कामनाये निर्मूल होकर नष्ट हो गयी हैं, वह विद्वान जीवित रहते हुये भी अमृत हो जाता है।[3] इस प्रकार शंकर के अनुसार मोक्ष के लिए ज्ञान अत्यावश्यक है क्यों कि ज्ञान से ही अविद्याा का अन्त होता है। मोक्ष के लिए कर्म का सहारा लेना व्यर्थ है। यद्यपि मीमासा के अनुसार मोक्ष कर्म से ही सम्भव है परन्तु शंकर के अनुसार कर्म और भक्ति ज्ञान प्राप्ति में भले ही सहायक हो किन्तु वे मोक्ष प्राप्ति मे सहायक नही है।

ज्ञान और कर्म विरोधात्मक है। ज्ञान विद्या है जबकि कर्म अविद्या। मोक्ष का अर्थ है अविद्या को दूर करना। अविद्या केवल विद्या के द्वारा ही दूर हो

---

[1] यस्मात् कामयमान एवैव ससरत्यथ
तस्मादकामयमानो न क्वचित् संसरति।
बृहदा0 शाकर भाष्य–4/4/6

[2] तस्मादिहैव ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति न शरीरपातोत्तरकालम्।
———बृहदा0 शाकर भाष्य–4/4/6

[3] अत्र अस्मिन्नेव शरीरे वर्तमाने ब्रह्म समश्नुते, ब्रह्मभाव मोक्षं प्रतिपद्यत इत्यर्थ। अतो मोक्षो न देशान्तरगमनाद्यपेक्षते।
बृहदा0 शाकर भाष्य 4/4/7

सकती है। शंकर ने एक मात्र ज्ञान को ही मोक्ष का उपाय माना है। ज्ञान की प्राप्ति वेदान्त दर्शन के अध्ययन से ही प्राप्त हो सकती है। वेदान्त का अध्ययन करने के लिए साधक को साधना की आवश्यकता होती है। यह साधना "साधन–चतुष्टय" के रूप मे इस प्रकार है –

(i) नित्या नित्य–वस्तु–विवेक –साधक को नित्य एव अनित्य वस्तु में भेद करने का विवेक होना चाहिए।

(ii) इहामुत्रार्थ–भोग–विराग –साधक को लौकिक एव पारलौकिक भोगो की कामना का परित्याग करना चाहिए।

(iii) शमदमादि–साधन–सम्पत् –साधक को शम, दम, श्रद्धा, समाधान, उपरति और तितिक्षा इन छ साधनों को अपनाना चाहिए।

(iv) मुमुक्षुत्वं.–साधक को मोक्ष प्राप्ति का दृढ संकल्प होना चाहिए।

साधक को इन चार साधनो से युक्त होकर वेदान्त की शिक्षा के लिए ऐसे गुरू के चरणो मे उपस्थित होना चाहिए जिसे ब्रह्म ज्ञान की अनुभूति

हो गयी हो। गुरू के साथ साधक को श्रवण, मनन, और निदिध्यासन की प्रणाली का सहारा लेना चाहिए। इस प्रणालियो से गुजरने के बाद पूर्व के सस्कार नष्ट हो जाते है एव ब्रह्म की सत्यता में अटल विश्वास हो जाता है। तब साधक को गुरू–"तत्वमसि" (तू ही ब्रह्म है) की दीक्षा देता है। जब साधक इस तथ्य की अनुभूति करने लगता है तब वह ब्रह्म का साक्षात्कार करता है और वह "अह ब्रह्मास्मि" (मै ब्रह्म हूँ) का अभिधान करता है। इस प्रकार जीव और ब्रह्म का भेद समाप्त हो जाता है एव बन्धन का अन्त हो जाता है तथा मोक्ष की अनुभूति होती है। मोक्ष की अवस्था मे जीव ब्रह्म में लीन हो जाता है। मोक्ष की प्राप्ति से संसार मे कोई परिवर्तन नही होता है। इसकी प्राप्ति से आत्मा का जगत के प्रति जो दृष्टिकोण होता है वह केवल परिवर्तित हो जाता है। मोक्ष की अवस्था मे जीव ब्रह्म से एकाकार हो जाता है। ब्रह्म आनन्दमय है। इसलिये मोक्षावस्था को भी आनन्दमय माना जाता है। मोक्ष की प्राप्ति के बाद भी मानव शरीर का अन्त नही होता है। शरीर मोक्ष प्राप्ति के बाद भी प्रारब्ध कर्मो के समाप्ति पर्यन्त रहती है। शरीर पर्यन्त मोक्ष को "जीवन मुक्ति" कहा जाता है। शकर की तरह साख्य, योग, जैन एव बौद्ध दार्शनिको ने भी जीवन मुक्ति को स्वीकार किया है। जीवन्मुक्ति प्राप्त व्यक्ति के सूक्ष्म और स्थूल शरीर

का जब अन्त हो जाता है तब विदेह मुक्ति की प्राप्ति होती है। इस प्रकार शकर के अनुसार विदेह मुक्ति मृत के उपरान्त ही उपलब्ध होती है।

प्रो० हीरियन्ना ने भी शकर के मोक्ष पर विचार करते हुए कहा है कि "मोक्ष कोई ऐसी अवस्था नही है, जिसे प्राप्त करना है बल्कि आत्मा का स्वरूप ही है। इसलिए साधारण अर्थ मे उसकी प्राप्ति के उपाय की बात नहीं की जा सकती। मोक्ष को प्राप्त करने का मतलब मात्र जीव का अपने सहज रूप को समझ लेना है, जिसे वह कुछ समय के लिये भूल गया था।"[1] इस प्रकार शकर का मोक्ष जैसा कि वर्णन किया जा चुका है, कोई अप्राप्त की प्राप्ति न होकर "प्राप्तस्व प्राप्ति" अर्थात् प्राप्त की ही प्राप्ति है।

इस प्रकार शकर के बन्धन एव मोक्ष या मुक्ति पर विचार करने के पश्चात् अब पाश्चात्य दार्शनिक स्पिनोजा के बन्धन और मुक्ति पर विचार करना समीचीन है। स्पिनोजा ने भी बन्धन और मुक्ति पर विस्तृत रूप से विचार किया है क्योकि यह ही उसके नैतिक मूल्यों का सर्वस्व है। जीवन का प्राप्य लक्ष्य क्या है? यह दर्शन का परम उद्देश्य है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए क्या करना समीचीन है? क्या यह लक्ष्य प्रयास से उपलब्ध होने वाला है?

---

[1] Outlines of Indıan Philosophy, (P, 378)

यह एक अत्यन्तावश्यक समस्या है। इसका हल ढूढा जाना स्पिनोजा ने भी अत्यन्त आवश्यक समझा। इस लक्ष्य की प्राप्ति के क्रम मे उनका कथन है कि यह लक्ष्य अगर प्रयास से उपलब्ध होने वाला होगा तो वह शाश्वत, अनन्त अथवा आध्यात्मिक नही हो सकेगा क्योकि व्यक्ति विशेष द्वारा सही अथवा गलत ढंग से जिस शाश्वत सत्य की खोज होगी वह उत्पन्न धर्मी अथवा शर्तो से प्रतिबन्धित होगा एव वह शाश्वत नही हो सकेगा। इसके विपरीत यदि यह लक्ष्य शाश्वत् रूप में पूर्ववत् स्थित, एव वर्तमान है—ऐसा स्वीकारा जाता है, तो फिर यह हमारे जीवन को प्रभावित क्यो नही करता? इस क्रम मे स्पिनोजा का मत है कि इसके पीछे अवश्य ही कोई बाधा है जो हमे इस लक्ष्य का आनन्द लेने से बाधित करती है एव ऐसे मे इस बाधा का निराकरण अत्यावश्यक है [1] जिससे इस बाधा से रहित होकर हम परम लक्ष्य का आनन्द ले सके। अस्तु

[1] There must be some obstruction which prevents us from enjoying the ideal, and it must be removed; we must be free from that obstruction.
—Spinoza in the light of the Vedenta.
—Bondage and freedom,P. 252—R. K. Tripath.
—Outlines of Indian Philosophy, (P, 378)

हमारा प्रयास इस बाधा का निराकरण होना चाहिए एवं इस बाधा का निराकरण ही मोक्ष या मुक्ति (freedom) है। इस प्रकार अन्तत स्पिनोजा सामान्य जीवन को बन्धन युक्त मानते हुए मोक्ष को आध्यात्मिक लक्ष्य माना है।[1]

प्रश्न उठता है किससे मोक्ष अथवा मुक्ति? इसका उत्तर है—अज्ञान से मुक्ति। क्योकि यदि अन्तिम लक्ष्य शाश्वत है एव हम सब इसका आनन्द नही ले पा रहे है तो इसका एकमात्र कारण इसके प्रति हमारी अज्ञानता ही है। यह आध्यात्मिक समस्या की एक बहुत बडी गुत्थी है कि हम अच्छे का अवलोकन करते हुए भी अनुवर्तन बुरे का करते है।[2]

महाभारत मे भी कहा गया है कि हम धर्म को जानते हैं, किन्तु इसका अनुशीलन नही करते एव अधर्म को जानता हूँ किन्तु इसका परित्याग

---

[1] Freedom Alone can be the goal of a spiritual discipline

- Spinoze in the light of vedanta
- Bondage and freedom P. 252
- R.K. Tripathi

[2] It is the very crux of the spiritual problem as to why we see the better and follow the worse

- Spinoza in the light of the Vedenta
- Bondage and freedom Page-256
- R.K. Tripath.

नही करता।[1] अस्तु हमे जो सत् एव मूल्यवान है उसे ढूढने का स्वभावत प्रयास करना चाहिए एव यदि हम शाश्वत एवं अनन्त शुभ के ढूढने एव उसका आनन्द लेने का प्रयास नही करते तो इसका एकमात्र कारण इसकी वास्तविकता का न जानना अथवा इसे भी सासारिक शुभ के रूप मे मानना ही है। जब तक हमारा मन सासारिक है एव हम इस क्षणिक शरीर को वास्तविक आत्मा के रूप मे मानते है तब तक हम इसी को ही अपने निर्णयो का आधार मानते है। ऐसे मे जो शारीरिक आवश्यकताओ की पूर्ति करता है, उसे अच्छा (Good) और इसको जो बाधित करता है उसे बुरा (Bad) माना जाता है। इस स्थिति में सम्पत्ति, ख्याति एव सासारिक सुख ही मूल्यो (Values) का आधार होता है। हमारा स्वभाव पूर्णतया वस्तुनिष्ट (objective) हो जाता है। हमारे सुख–दु:ख सांसारिक वस्तुओ पर आधारित हो जाते है।

शाश्वत् सत् की प्राप्ति के लिए हमें सांसारिक वस्तुओं से अपने को विलग करना होगा। सासारिक वस्तुओ मे सुख–दु:ख देने की क्षमता नही है। वस्तुत यह हमारे ऊपर निर्भर करता है। आध्यात्मिक पुरूष सुख–दु:ख का

---

[1] जानामि धर्मम् न च मे प्रवृत्ति
जा नामि अधर्मम् न च मे निवृत्ति ।।

कारण वस्तु को न मानकर अपने को (आत्मा को) मानता है।[1] शुभ–अशुभ, अच्छा–बुरा का निर्धारण सासारिक वस्तुओं के आधार पर करना अनुचित होगा। सासारिक वस्तुओं मे अपने आप मे यह क्षमता नही होती है। इसका शुभ–अशुभ, अच्छा–बुरा, होना हमारे विचारो पर निर्भर करता है।[2] जैसे संगीत एक गायक के लिये सुखकर एव एक दु:खी विलाप करने वाले के लिए पीडा पहुॅचाने वाला होगा। इस प्रकार सुख–दु ख का कारण वस्तु न होकर हमारी अन्तरात्मा ही है। ऐसे सुख–दु:ख के कारण के लिए हमें अपनी अन्तरात्मा मे घुसना होगा एव इसी में इसका कारण ढूढना समीचीन होगा।[3]

---

[1] In fact, this is the greatest characteristic of the spiritually awakenend man; he comes to realise that his happiness or unhappiness depends on himself rather than on objects.
- Spinoza in the light of the Vedanta.
- Bondage and freedom P. 253
- R. K Tripath.

[2] "... .. . .appear to conceive man to be situated in nature as a kingdom within a kingdom For they believe that he disturbs rather than follows nature's order, that he has absolute control over his actions, and that he is determined solely by himself."
- Ethics Preface to part III.

[3] Hence in order to know the root of passions a searching self-analysis must be made.
- Spinoza in the light of the vedanta.
- Bondage and freedom page. 254.
- R. K Tripathi.

स्पिनोजा के अनुसार मनुष्य स्वतन्त्र अथवा मुक्त है। यहाँ स्वतन्त्रता (मुक्ति) का अर्थ अपने स्वभाव–नियत कर्म. को करना है। इन्द्रियानुभव, वासना, भावना आदि के वशीभूत होकर कर्म करना ही मनुष्य का बन्धन (Bondage) है। मनुष्य जब अपने सवेगो, इन्द्रियानुभव, वासना आदि के वशीभूत होकर कर्म करता है, तब वह बिल्कुल पराधीन हो जाता है। वह अपना स्वामी नही रहता। वह भाग्य के पराधीन हो जाता है। इस स्थिति मे वह अच्छे का अनुशीलन करने एव बुरे के परित्याग करने की स्थिति मे नहीं रहता। स्पिनोजा के अनुसार यही मानव का बन्धन है।[1]

इस प्रकार काल्पनिक ज्ञान के द्वारा सचालित कर्म बन्धन कारक हैं। ये मनुष्य की परतन्त्रता के द्योतक है। मनुष्य केवल अपने स्वभावनुकूल कर्म करने मे ही स्वतन्त्र है। अस्तु मानव स्वतन्त्रता न तो पराधीनता है और न ही स्वेच्छाचारिता है। यदि मनुष्य अपने स्वभाव–कर्म के विपरीत कर्म करता है तो वह बन्धन को प्राप्त होगा अथवा वह स्वेच्छाचारी या अराजक होगा।

---

[1] Human ınfirmity in moderating and checking the emotıons I name bondage. For when a man is a prey to hıs emotions, he is not his own master, but lie sat the mercy of fortune; so much so that he is often compelled, whıle seeing that which is better for him, to follow that which is worse —Ethics Preface to Part IV

जब मनुष्य वाह्य जगत से प्रभावित होकर भावनाओ एवं सवेगो आदि को अपने मे पैदा कर लेता है तो वह पराधीन हो जाता है। प्रेम, क्रोध, काम एवं लोभ आदि के वशीभूत होकर किए गये कर्म मनुष्य को पराधीन बना देते है। इस कारण स्पिनोजा बुद्धि के द्वारा वासनाओ को नियमित (दमन) कर सयमित जीवन पर विशेष बल देता है। इसी मे मानव का कल्याण और मुक्ति निहित है।

स्पिनोजा वाह्य प्रकृति से प्रभावित होने को ही बन्धन मानता है। उसके अनुसार वाह्य नियन्त्रण ही बन्धन है। मानव के निर्माण मे दो तत्व द्रव्य एवं पर्याय अथवा नित्य एव अनित्य तथा इन दोनों का मिलन ही बन्धन है। स्पिनोजा का कथन है कि प्रकृति के अतिरिक्त अपने को कुछ न समझना ही बन्धन है एव अपने को पूर्णतया प्रकृति के अश के रूप मे सोचना मेरी अज्ञनता है–ऐसा अनुभव ही स्वतन्त्रता है।[1] स्पिनोजा इस तथ्य को स्वीकरता है कि

---

[1] Our bondage consists in the belief that we are nothing beyond nature, and freedom would mean realisation that it is due to ignorance that man considers himself wholly a part of nature.
- Spinoze in the light of the vedanata.
- Bondage and freedom, P. 269

मनुष्य मे एक ऐसा तत्व भी है जो प्रकृति के परे है एवं यह शाश्वत् तथा अनन्त है। यथोक्त अज्ञानता वश इसका अनुभव न होना ही बन्धन है।[1]

स्पिनोजा की उपर्युक्त विचारधारा सामान्यतया विरोधपूर्ण है। मनुष्य का प्रकृति का अश होने के साथ–साथ प्रकृति से पूर्णतया स्वतन्त्रत अथवा विलग होना कैसे संभव? मानव यदि प्रकृति का अंश है तो प्रकृति बन्धन नही हो सकती। यदि वह प्रकृति का अश नही होगा तो वह प्रकृति मे अन्तर्निहित नही होगा। किन्तु स्पिनोजा यथोक्त दोनों का होना समीचीन एवं आवश्यक मानता है तथा इस समस्या का हल वह यह कहकर करता है कि सामान्यतया मनुष्य प्रकृति का अंश है किन्तु वस्तुत वह प्रकृति से परे ही है। मनुष्य प्रकृति से स्वतन्त्रत इसलिए नही है कि वह स्वचेतन अथवा स्वतन्त्र इच्छा युक्त है बल्कि उसकी स्वतन्त्रता इसलिए है कि उसकी यथार्थता या स्वत्व प्रकृति के परे है।

स्पिनोजा के अनुसार मनुष्य एक पर्याय के रूप मे प्रकृति का अंश

---

[1] This is why his bondage comes to mean really his ignorance; there can be no real bondage; in fact there is no bondage at all.
- Spinoza in the light of the vedanta
- Bondage and freedom P. 270
- R K. Tripathi

है किन्तु वस्तुत वह पर्याय भी नही है। मनुष्य का अपने को प्रकृति का पर्याय के रूप मे अश मानना ही बन्धन (Bondage) है। स्वतन्त्र होने के लिए वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति अनिवार्य है। यह वास्तविक ज्ञान द्रव्य का ज्ञान है, ईश्वर से तादात्म्य का ज्ञान है।[1] यह अज्ञानता है, जिसके द्वारा बन्धन वास्तविक प्रतीत होता है। बन्धन वास्तविक नही हो सकता। यदि यह वास्तविक होगा तो इसका निराकरण संभव नहीं होगा।[2] जब तक अज्ञानतावश हम वाह्य वस्तुओ को अपनी वासनाओ का कारण समझते है एव अपने को मात्र पर्याय ही समझते है, तब तक प्रकृति हमारे लिये बडी ही महत्वशील होती है किन्तु वासनाओ के वास्तविक कारण एवं अपने वास्तविक स्वरूप का परिज्ञान होते ही तथा पर्याप्त ज्ञान की उपलब्धि होते ही मनुष्य प्रकृति के चगुल से अवमुक्त हो जाता है। इस प्रकार मनुष्य का ईश्वर के प्रसग मे अपने को तथा समस्त वस्तुओ को

---

[1] Man, ın order to be free, has to attaın real knowledge, the knowledge of his subslance, the knowledge that he is ıdentical with God.
- Spinoza ın the light of the vedanta
- Bondage and freedom P. 270
- R. K. Trıpathı

[2] It is ignorance that makes our bondage appear real. Bondage can never be real, other wise it can never be removed
- Spinoza in the lıght of the vendata
- Bondage and freedom P. 270
- R. K. Trıpathı

जानना ही वासनाओ के वास्तविक कारण की जानकारी है तथा यह जानकारी या ज्ञान ही वस्तुत· प्रकृति से मुक्ति है।

स्पिनोजा के अनुसार मनुष्य का अपने को दैवी शक्ति से अतिरिक्त समझना ही बन्धन का कारण है। उनके अनुसार ईश्वर ने मनुष्य को स्वतन्त्र रखना चाहा किन्तु उसको (ईश्वर को) भूल जाने के कारण ही वह मनुष्य बन्धन मे पड गया है। जैसे ही वह ईश्वर को आत्मसात करता है, वह बन्धन से अवमुक्त हो जाता है।[1] यहॉ उल्लेखनीय है कि हिन्दुओं के अनुसार बन्धन केवल साक्षात्कार (Revelatıon) द्वारा ही ज्ञेय है न कि तर्क (Reason) द्वारा। ऐसा इसलिए कि इनके अनुसार बन्धन जन्म–मृत्यु का चक्र है एव ऐसे में बन्धन का जानना केवल साक्षात्कार (Revelatıon) द्वारा ही सभव है किन्तु यदि बन्धन वासनाओ के कारण है–जैसा कि स्पिनोजा का मत है, तो यह तर्क द्वारा ज्ञेय है तथा ऐसा मानना अयथावत् नही है।

हम बन्धन युक्त है, यह सुनिश्चित है। ऐसे मे प्रश्न उठता है कि

---

[1] God wanted man to be free but man fell ın bondage when he forget God; to know God is to be out of the bondage
- Spinoza in the light of the vedanta
- Bondage and freedom Page 271
- R. K. Tripathı.

क्या हमारे हाथ पैर बंधे है अथवा मुक्ति (freedom) की कुछ सम्भावनायें है? स्पिनोजा के कुछ अनुयायियो (student) की विचारधारा है कि स्पिनोजा की नियतिवादी विचारधारा मे स्वतन्त्रता अथवा मुक्ति (freedom) के लिए तनिक भी स्थान नही है। इस दृष्टि से हम समुद्र की उन लहरो के समान है जो विरोधी हवाओ से पैदा होती हैं एव जिसके लिए स्वतन्त्रता का स्थान नही है ऐसे मे यदि हमारे लिए स्वतन्त्रता सभव नही है, तो फिर बन्धन से मुक्ति का प्रश्न कहाँ उठता है? किन्तु वस्तुत स्पिनोजा के विषय मे ऐसा सोचना समीचीन नहीं। उनका ऐसा दृढ विश्वास है कि उनकी नियतिवादी विचारधारा अनेक विसगतियो का निराकरण करने के साथ–साथ हमारे जीवन को सुव्यवस्थित करती है। नियतिवादी विचारधारा हमारे मस्तिष्क को शान्ति प्रदान करने के साथ–साथ हमे इस बात की भी शिक्षा देती है कि अधिकतम आनन्द ईश्वर–ज्ञान मे ही निहित है। उनकी यह विचारधारा व्यक्तिगत एव सामाजिक दोनो क्षेत्रों मे मनुष्य का उत्थान करने वाली है। व्यक्तिगत जीवन में जहॉ उनकी नियतिवादी विचारधारा मानसिक शान्ति प्रदान कर ईश्वर से तादात्म्य का अनुभव कराती है, वही दूसरी ओर मनुष्य के सामाजिक जीवन का भी

उत्थान कर मनुष्य को मनुष्य से घृणा करने से रोकती है।[1] उनके अनुसार आदर्श नागरिक वह नही है जो कानून के विपरीत जाने हेतु स्वतन्त्र हो बल्कि इसके विपरीत आदर्श नागरिक वह है जो इनको विधिवत समझकर इनका अनुपालन करता है। इस प्रकार स्पिनोजा की नियतिवादी विचारधारा एक आदर्श नागरिक बनने मे सहयोगी है[2] एव इसके सबंध मे विरोधियो की शकाये तथ्ययुक्त नही है। कुछ नीतिज्ञ (Moralists) स्पिनोजा की इस विचारधारा (भौतिकीय बाह्य वस्तुओ की गौणता तथा नियतिवादिता) की आलोचना करते हुए इस बात को भूल जाते है कि स्पिनोजा का बाह्य वस्तुओ की अनिवार्यता की उपेक्षा के विषय मे केवल इतना ही मन्तव्य है कि इनकी प्राप्ति या उपेक्षा उतनी अनिवार्य नही जितना कि आध्यात्मिक स्तर के जीवन की। ऐसे मे वाह्य वस्तुओ एव आध्यात्मिक जीवन मे पारस्परिक विरोध न है और न होने की

---

[1] The doctrine of determinism besides bringing peace to the mind teaches us that our greatest happiness or blessedness lies in the knowledge of God. It teaches us to face both the aspects of our life with equanimity, since every thing is eternally, decreed. It improves social life in that we refrain from hating or envying anyone.
- Spinoza in the light of the vedanta
- Bondage and freedom P. 272
- R. K. Tripathi

[2] Cf. Ethics Appendix to Part II Four advantages are enumerated.

सभावना ही है।[1] अस्तु स्पिनोजा की नियतिवादी विचारधारा के सम्बन्ध में उपर्युक्त आपत्ति सारयुक्त नही है। इस सम्बन्ध मे यह भी विचारणीय है कि वाह्य वस्तुये जिनको स्पिनोजा सारहीन या वास्तविक सत्ता रहित समझता है, उन्हे ईश्वर की प्राप्ति मे बाधक नही मानता। व्यावहारिक जीवन मे हम देखते है कि सारहीन वस्तुएँ भी प्रभवोत्पादक होती है। रस्सी मे सर्प की प्रतीति भी भयोत्पादक होती है। इतना ही नही कुछ माने मे तो यह भी कहा जा सकता है कि केवल असत् वस्तुये ही सत् (Real) का ज्ञान करा सकती है क्योंकि द्रव्य (ईश्वर) निष्क्रिय है। ईश्वर को हमारे कल्याणार्थ अवतरित होने हेतु शरीर (Body), जो कि असत् है, को धारण ही करना पडता है।[2] इस प्रकार गंभीरता

---

[1] He wants to urge that the inevitable necessity of things is not of the same level as our empirical life and therefore not only does not but cannot clash with any of our practical affairs or attitudes.
- Spinoza in the light of the vedanta
- Bondage and freedom
- page 273 —R K. Tripathi.

[2] In fact, the unreal alone can help us; because the Absolute in itself is inactive. God has to incarnate Himself, i.e. has to asssume a body which is unreal, in order to be able to help us.
- Spinoza in the light of the vedanta
- Bondage and freedom
- Page 274
- R. K. Tripath.

पूर्वक विचार करने पर स्पिनोजा का नियतिवाद, मुक्ति (freedom) मे बाधक नही है।

मनुष्य की पूर्णता एव स्वतन्त्रता का तात्पर्य ईश्वर के प्रति स्थिर एव नित्य प्रेम से है। यह प्रातिभ ज्ञान (Intuitive Knowledge) की अवस्था मे प्राप्त होता है। इस अवस्था मे ज्ञान एवं अनुभूति की एकता होती है। इसका सारतत्व ईश्वर का साक्षात्कार है। इस स्थिति में साधक एव साध्य का भेद समाप्त हो जाता है। सृष्टि के प्रत्येक कण–कण एव मनुष्य ही नहीं अपितु समस्त प्राणियों, जीव–जन्तुओ मे ईश्वर का प्रकाश अवलोकित होता है। यह सीमा का भूमा (अनन्त) से मिलन है। इस अवस्था मे मन राग–द्वेष आदि से रहित हो जाता है एवं यह जड चेतन ईश्वर की शरीर होने के कारण मुक्त आत्म पुरूष के लिए यत्रवत् हो जाता है। यह स्पिनोजा के दर्शन में विश्व की यान्त्रिक व्यवस्था है। इसकी तुलना श्रीमद्भगवद्गीता के स्थित प्रज्ञ से की जा सकती है।[1] स्थित प्रज्ञ भी सत्कर्मो को यन्त्रवत् करता है। यह शुभ या अशुभ मे

---

[1] प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थमनोगतान।
आत्मन्येवात्मना तुष्ट स्थित प्रज्ञस्तदोच्यते।। – श्रीमद्भगवद्गीता –2/55

भेद रहित एवं राग–द्वेष से विरत होकर कर्म करता है।[1] यह व्यावहारिक दृष्टि से कर्म करने वाला भले प्रतीत हो किन्तु वस्तुत कर्म नही करता है। इस स्थिति में लाभ–हानि, शुभ–अशुभ एव जय–पराजय का द्वन्द्व शाश्वत् शुभ में शान्त हो जाता है। कुछ आलोचक इसको कर्म स्वातन्त्रय न मानकर नियतिवाद मानते हुए स्पिनोजा की आलोचना करते है। वस्तुत स्पिनोजा का यह नियतिवाद सर्वेश्वरवाद है। स्पिनोजा के अनुसार विश्व मे कोई प्रयोजन नहीं है। उनके अनुसार मनुष्य किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए गतिशील एव क्रियाशील नही है बल्कि वे गतिशील एव क्रियाशील इसलिए है कि उन्हें ऐसा होना ही है। वे वही कर रहे जो उन्हे करना है। जैसा कि श्रीमद्भगवद्गीता मे भी कहा गया है कि ईश्वर सभी भूतो के हृदय मे स्थित होकर उनको अपनी माया से उसी प्रकार घुमाता या भ्रमण कराता है जिस प्रकार यन्त्र पर आरूढ कठपुतली आदि को खिलाडी भ्रमण कराता है।[2] इस प्रकार स्पिनोजा संकल्प स्वातन्त्रय को

---

[1] दु:खेष्वनुद्विग्नमना· सुखेषु विगतस्पृह ।
वीतरागभयक्रोध स्थितधीर्मुनिरूच्यते।
श्रीमद्भगवद्गीता –2/56

[2] ईश्वर सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।। – श्रीमद्भगवद्गीता –18/61

न मानकर प्रकृति में नियतिवाद का पोषक है। सकल्प का निर्णय एव शरीर की गति एक ही तत्व से सम्बन्धित है जो दो सन्दर्भो मे दो नाम से अभिहित किया जाता है। इस प्रकार वैचारिक निर्णय एव वैस्तारिक कार्य एक ही घटना के दो भाग है। मनुष्य मोहवश अपने को स्वतन्त्रत मानता है। वस्तुत अज्ञान एवं आसक्ति पर आधारित यह स्वतन्त्रता वैसी ही है, जैसा कि एक पत्थर को अपने फेके जाने पर चेतना हो जाने के कारण स्वतन्त्रता की प्रतीति हो सकती है।

नियतिवाद को स्वीकार करने पर नैतिक एवं आध्यात्मिक जीवन की स्वन्तत्रता कैसे संभव है? स्पिनोजा इस समस्या का समाधान अपनी ईश्वरीय व्यवस्था से करता है। उनका कथन है कि नियतिवाद ईश्वरीय विधान का उल्लघन नही करता। इसके द्वारा मानवीय नियमो की अवहेलना भी नही होती। स्पिनोजा का नियतिवाद सृष्टि की सर्जनात्मक शक्ति की अनिवार्यता है। ईश्वर से सृष्टि स्वभावतः नि सरित होती है एवं यन्त्रवत् सारे क्रिया कलाप ईश्वरीय व्यवस्था से स्वयंमेव सम्पन्न हो रहे है। यह यान्त्रिकवाद है क्योकि इसके रचना में ईश्वर का कोई प्रयोजन नही है। ईश्वर आप्तकाम एव पूर्ण है; ऐसे मे उसमे किसी इच्छा की कल्पना नही की जा सकती। इस प्रकार

स्पिनोजा के दर्शन में नैतिक आचार एवं पूर्णता दोनो साथ साथ फलित होते है।

पाश्चात्य विद्वानो द्वारा स्पिनोजा को समझने मे दूसरी बाधा डालने वाली बात उनके द्वारा नैतिकता (Morality) एव आध्यात्मिकता (Spirituality) के पारस्परिक अन्तर को समझने की भूल है। नैतिकता मुख्यतया अहवादी (Egoistic) है। ऐसे में यह आत्मा का निर्णय होता है। यह मुख्यतया मानसिक अन्तर्द्वन्द्व में पैदा होता है एव इसमे मूल्यों के विकल्पो की पूर्व अवधारणा होती है। ऐसे मे यह शाश्वत मूल्यो (Absolute Values) का निषेध (Negation) है। नैतिकता अनुभव पर आधारित जीवात्मा (Empirical self) से प्रारम्भ होती है। अस्तु मुक्ति (Freedom) की चेतना (Feeling) मुख्यतया इससे सम्बद्ध है। आध्यात्मिकता (spirituality) का सार तत्व (Essence) जीवात्मा से स्वतन्त्र होना है। यह जीवात्मा से अतिरिक्त एव द्वैत से परे है। यह मानसिक अन्तर्द्वन्द्वो मे नही पैदा होती अपितु यह शाश्वत् मूल्य की अवधारणा के साथ पैदा होती है। आध्यात्मिकता का प्रयास जीवात्मा के उत्थान पर नही अपितु जीवात्मा से मुक्त होने का है। स्वतन्त्रता आध्यात्मिकता के लिये गौण है। आध्यात्मिक जीवन

विकल्पो के मूल्याकन अथवा मानसिक अन्तर्द्वन्द्वो के निस्तारण पर आधारित नही बल्कि यह असीम एव नित्य की परम दृष्टि पर निर्भर है।[1]

इस प्रकार स्पिनोजा की आध्यात्मिकता सम्बन्धी विचारधारा जो नियतिवाद पर आधारित है—नैतिकता के लिये बाधक नही; नैतिक मूल्यों के चयन मे स्वतन्त्रता की अवरोधक नहीं। स्पिनोजा का यह कथन है कि नियतिवाद (Determinism) नैतिकता के लिए अवरोधक नही है—पूर्णतया निर्विवाद एव तर्कपूर्ण है। उनके अनुसार आध्यात्मिक व्यक्ति के लिए यह कोई महत्व नही रखता कि वह नैतिक मूल्यो का अनुशीलन अनिवार्यता की दृष्टि से कर रहा है अथवा स्वतन्त्र भाव से। वस्तुतः आध्यात्मिक व्यक्ति स्वभावत. नैतिक मूल्यो के अनुसार आचरण करता है।[2] सामान्य मानव भावनाओ एवं सवेगो के वशीभूत होकर कार्य करता है। ऐसे में उसके समक्ष ही मानसिक अन्तर्द्वन्द्व एव

---

[1] It arises with the awareness of an absolute value and not in conflicts; its endeavour is not to develop but to get rid of the empirical self or the ego.
—Spinoza in the light of the vedanta
—Bondage and freedom page-274 —R.K. Tripathi

[2] In fact, morality becomes so organic to the personality of the spiritual man that he follows it almost unconsciously, almost as a mattedr of taste. The spiritual man is moral effortlessly or instinctively without the experience of a conflict
—Spinoza in the light of the Vendanta
—Bondage and freedom—Page-275, —R K. Tripathi.

दण्ड अथवा पुरस्कार की बाते उठती है किन्तु आध्यात्मिक व्यक्ति जो अनन्त सत् से दिशा लेता है, उसके द्वारा किसी नैतिक मूल्य के अतिक्रमण का प्रश्न ही नही उठता।

आध्यात्मिकता (spirituality) एव नैतिकता (Morality) में किसी प्रकार का विरोध अथवा पारस्परिक बाधक होने की बात–गम्भीरता पूर्वक विचार करने पर अयथावत् सिद्ध है। भारतीय दर्शनिकों एवं विचारकों ने आध्यात्मिकता एव नैतिकता अथवा व्यावहारिक एव पारमार्थिक के अन्तर को प्रायः बडी ही आसानी से समझा एव इसीलिए इनके बारे मे प्राय कभी वाद–विवाद नही हुआ। सभी सम्प्रदाय चाहे वे हिन्दूवादी (Hinduism) हो या बौद्ध धर्मावलम्बी हो या जैन धर्मावलम्बी हो–सभी कर्मवाद के समर्थक हैं किन्तु वे पुरूषार्थ के विरोधी नही है। श्रीमद्भगवद्गीता मे तो यहॉ तक कहा गया है कि सभी प्राणी अपने स्वभाव से परवश हुये कर्म करते है, ज्ञानवान भी अपनी प्रकृति के अनुसार चेष्टा करता है।[1] इस प्रकार स्पिनोजा का नियतिवाद नैतिक मूल्यो के निर्धारण अथवा प्राप्ति में बाधक नही अपितु प्रबल साधक है।

---

[1] सदृश चेष्टते स्वस्या. प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृति यान्ति भूतानि निग्रह किं कारिष्यति।।
—श्रीमद्भगवद्गीता–3/33

यह बात द्रष्टव्य है कि स्पिनोजा वासनाओ के वशीभूत होने से बचने के लिए नियमित प्रयास एव अभ्यास पर बल देता है। हमारी काम वासनाये हमे पथभ्रमित कर सकती है। ऐसे मे बुद्धि को सुव्यवस्थित आचरण के लिये सतर्क रखना आवश्यक है। ऐसी सतत सतर्कता एव इसका सतत अभ्यास करते–करते मनुष्य स्वभावत· सदाचार एव विवेकपूर्ण आचरण करने वाला हो जाता है क्योकि किसी चीज का सतत अभ्यास स्वमेव स्वभाव मे परिवर्तित हो जाता है।[1] जो व्यक्ति अपने को एव अपने सवेगों को विधिवत समझता है वह ईश्वर से प्रेम करता है। साथ ही साथ मनुष्य का अपने एव अपने सवेगो का समझना जितना ही अधिक एव प्रबल होता है, ईश्वर से उसका प्रेम भी उतना ही अधिक एव प्रबल होता है।[2] यह ईश्वर–प्रेम वासनाओं को नियंत्रित करने वाला होता है क्योकि एक सवेग दूसरे अपेक्षाकृत प्रबल सवेग से नियन्त्रित होता है एव ईश्वर प्रेम का सवेग सबसे श्रेष्ठ तथा प्रबल संवेग होने के कारण

---

[1] "So long as we are not assailed by emotions contrary to our nature we have the power of arranging and associating the modifications of our body according to the intellectual order.
- Ethics, V. Prop. 10.

[2] " He who clearly and distinctly understands himself and his emotions loves God, and so much the more in proportion as he more understands himself and his emotions.
- Ethics V, Prop. 15

सभी सवेगों को नियन्त्रित कर सकेगा। इस प्रकार ईश्वर प्रेम की अवस्था में मनुष्य का ज्ञान अनुभव में, तर्क अन्तर्ज्ञान (Intuition) मे परिवर्तित हो जाता है एव उसे आनन्द की अनुभूति होती है तथा उसे शाश्वत सत् की प्राप्ति हो जाती है। गीता में भी इसी बात को अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा है कि हे कृष्ण। यह मन बडा चचल है और प्रमथन स्वभाव वाला है तथा दृढ एवं बलवान है। इसलिये इसका वश मे करना वायु की तरह अति दुष्कर मानता हूॅ। इस प्रकार अर्जुन के कहने पर श्रीकृष्ण ने बताया कि हे अर्जुन ! नि:सन्देह मन चंचल एव कठिनता से वश मे होने वालाहै,परन्तु हे अर्जुन। अभ्यास एव वैराग्य से वश मे किया जाता है। इसलिए इसको अवश्य यथोक्त वश मे करना चाहिए।[1]

स्पिनोजा का भी यही अभिमत है। प्रयत्नत. अभ्यास करने वाला स्पिनोजा का आध्यात्मिक पुरूष कभी भी कदाचार एव नैतिकता के विपरीत आचरण नही करता। इस प्रकार बुद्धि का सतत संयम एव नियन्त्रण करता हुआ

---

[1] चंचलं हि मन कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याह निग्रह मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।।
श्रीमद्भगवद्गीता –6/34
असशय महाबाहो मनो दुर्निग्रह चलम।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।
श्रीमद्भगवद्गीता –6/35

नियतिवाद का अनुगामी नैतिकता पूर्ण आचरण स्वतन्त्र वातावरण मे सम्पन्न करता है। यही स्पिनोजा की ईश्वरवादी व्यवस्था में अभीष्ट है।

स्पिनोजा नैतिकता एव आध्यात्मिकता मे अन्तर व्यक्त करते हुए यथोक्त नैतिकता को बाह्य वस्तुओ से प्रभावित माना है जब कि आध्यात्मिकता को अन्त. सबधित स्वीकारा है। उनके अनुसार आध्यात्मिकता व्यक्ति के अन्त अनुभव का विषय है। नैतिकता आचरण पर निर्णय देती है जबकि आध्यात्मिकता अन्त चरित्र पर दृष्टि रखती है। आध्यात्मिकता अन्त करण से निर्णीत होती है।

स्पिनोजा का कथन है कि आत्मा अपने अतिरिक्त अन्य की इच्छा नही करती तथा अपने से अतिरिक्त अन्य को बिना शर्त के आत्मा स्वीकारती भी नही। ऐसे मे स्पिनोजा के अनुसार आदर्श (Virtue) अगर इसे पूर्ण शुभ (Absolute good) होना है, तो यह एक प्रकार से आत्म–प्रेम ही होगा। स्पिनोजा आत्म–प्रेम को ही पूर्ण–शुभ मानता है। आत्म–हत्या भी आत्म–प्रेम का ही विषय है, ऐसे मे क्या यह भी शुभ के रूप मे स्वीकार किया जा सकता है? इस शंका के निराकरण के सम्बन्ध मे स्पिनोजा का विचार है कि आत्म–हत्या 'आत्म–प्रेम' नही है, यह अज्ञानता वश आत्म–प्रेम के रूप मे स्वीकारा जाता है।

वस्तुतः आत्म हत्या करने वाली आत्मा स्वय न होकर इसका कारण उसका अज्ञान है।

स्पिनोजा के अनुसार मनुष्य का सर्वस्व आत्म–रक्षा है एव आत्म–रक्षा के योग्य होने की सामर्थ्य (Power) ही आदर्श (Virtue) है। यह आदर्श (आत्म–रक्षा) ही पूर्ण (Absolute) है क्योकि मनुष्य अपने स्वत्व को इसके अतिरिक्त अन्य किसी चीज के लिए सुरक्षित नही रखना चाहेगा।

स्पिनोजा का यह आत्म–प्रेम बृहदारण्यक–उपनिषद् की भॉति है जहॉ पर कि सभी वस्तुये इसलिए प्रिय बतायी गई है कि वे आत्मा को प्रिय है। कोई चीज अपने आप प्रिय नही है।[1] स्पिनोजा का यह आत्म–प्रेम 'स्वार्थवाद' का प्रवर्तक नही है। वस्तुत आत्म–प्रेम से युक्त व्यक्ति किसी अन्य के लिए बाधक नही है। आत्म–प्रेम तर्क सम्मत होता है। तर्क से नियन्त्रित व्यक्ति का आचरण किसी के लिए बाधक नही होता है। तर्क सगत आचरण करने वालो मे संघर्ष की सम्भावना नही होती है। सामाजिक कलह वास्तविक 'आत्म–प्रेम' के परिणामस्वरूप नही है। अपितु वासनाओ अथवा पापात्मा (Wrong-self) के प्रेम

---

[1] न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्व प्रिय
भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्व प्रिय भवति।
— बृहदारण्यकोपनिषद्–2/4/5

अथवा अज्ञानता अथवा दिकभ्रमित होने के कारण होती है।[1] इसके विपरीत अज्ञानयुक्त स्वार्थी व्यक्ति का आत्म–प्रेम स्व हिताय होने के साथ अन्य से अपेक्षा करता है कि अन्य सभी भी उसके लिए समर्पित हो अर्थात् अन्य सभी आत्म–प्रेम के विपरीत परात्म–हिताय आचरण करे।[2] अस्तु स्पिनोजा का आत्म–प्रेम 'स्वार्थी' है–ऐसी आपत्ति आधार–हीन एवं युक्ति युक्त नहीं है।

स्पिनोजा के अनुसार मनुष्य का आनन्द तर्क युक्त जीवन में है। मनुष्य परमानन्द की प्राप्ति तब करेगा, जब तर्क के महानतम प्रत्यय (Highest Idea) ईश्वर को समझ सकेगा। ऐसे मे मस्तिष्क के लिए महानतम शुभ अथवा महानतम आदर्श (Virtue) ईश्वर ज्ञान है। स्पिनोजा का यह तर्क युक्त आचरण शुष्क एव नीरस जीवन नही है। आदर्श जीवन आनन्द एव आरामदायक हो

---

[1] Social quarrels are not due to real self-love but due to passions, or due to the love of a wrong self, i.e due to ignorance or confusion.
- Ethics IV Props. 32, 33, 34

[2] An ignorant man, instead of living for his real self, is all the time mad after an unreal self and is really killing himself
- Spinoza in the light of the Vedanta
- Bondage and freedom.
- Page 285
- R. K. Tripathi.

सकता है। यह अवश्य है कि आदर्शवादी मनुष्य शरीर के अंग विशेष के आनन्द की अपेक्षा पूरी शरीर के आनन्द के लिये तथा वर्तमान कम सुख की अपेक्षा भविष्य के अधिक सुख के लिए चिन्तित होता है।[1] इसका यह अभिप्राय नही जैसा कि कुछ आलोचक कहते है कि स्पिनोजा विरक्त मार्गी या संन्यासी था। अपितु वह संयमित जीवन के पक्षधर थे। यह मत गीता के उस योगी की आचार सहिता से तुलनीय है जो संतुलित आहार एव विहार आचार वाला है।[2]

स्पिनोजा मनुष्य को वर्तमान मे उपलब्ध भोजन आदि के परित्याग को नहीं कहता, बल्कि इन सब के आनन्द लेने की बात कहता है। वह वाह्य

---

[1] The virtuous man cares for the pleasure of the whole body rather than for that of only one part, and desires a greater future good before a lesser present one

- Ethics Prop 60, 66

[2] युक्ताहार विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दु खहा।।
यदा विनियत चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते।
नि स्पृह सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा।।
यथा दीपो निवातस्थो नेड्गतेसोपमा स्मृता।
योगिनी यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मन ।।
यत्रोपरमते चित्त निरूद्ध योगसेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति।।
य लब्ध्वा चापर लाभ मन्यते नाधिक तत ।
यस्मिन्स्थितो न दु:खेन गुरूपाणि विचाल्यते।।

श्रीमद्भगवद्गीता –6/17, 18, 19, 20, 22

जगत् के प्रकृति– सौन्दर्य, पेड–पौधो के सौन्दर्य, संगीत के माधुर्य, पहनावों की रमणीयता के सुख–आनन्द का विरोधी नही है। इन सब के सुख एव आनन्द लेने मे स्पिनोजा की सावधानी केवल इतनी ही है कि सुख एव आनन्द मे अन्ततः अपना एव पडोसी का अहित नही होना चाहिये।[1] अन्ततः वह मनुष्य को सावधान केवल इस बात के लिए करता है कि बाह्य जगत् की सुख–सुविधा प्रदत्त करने वाली वस्तुओ द्वारा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप मे हमारे विचारों एव भावनाओ को कुप्रभावित नही होना चाहिए।

स्पिनोजा सहानुभूति एव पाश्चाताप जैसे संवेग जो सामान्यतया अच्छे प्रतीत होते है–को भी तार्किक व्यक्ति के लिए अयथावत् मानता है। ऐसा मनुष्य जो यह अनुभव करता है कि सभी वस्तुये दैवी अपेक्षाओ का अनुवर्तन करती है एवं शाश्वत् नियमो एव विधानो के अनुसार संचालित है–उसको किसी चीज से घृणा एव विद्वेष नही होगा और न ही वह किसी चीज के प्रति सहानुभूति या पाश्चाताप करेगा तथा मानवीय मूल्यों के अन्तिम पराकाष्ठा तक

---

[1] I say it is the part of a wise man to refresh and recreate himself with moderate pleasant food and drink, and also with perfumes, with the soft beauty of growing plants, with dress, with music, with many sports, with theatres, and the like, such as every man may make use of without injury to his neighbour.

- Ethics IV Scholium II to Porp 45

वह सत्कर्म करने का प्रयास करेगा। तर्क सगत एवं नियतिवाद का अनुवर्तन करने वाले आध्यात्मिक पुरूष के सम्बन्ध मे घृणा एव विद्वेष तथा सहानुभूति एव पाश्चाताप जैसे वासनाओं एव सवेगो से प्रभावित होने जैसी आपत्तियो के लिए भी स्पिनोजा की विचारधारा मे स्थान नही है। अस्तु स्पिनोजा के अनुसार सामान्यतया धार्मिक व्यक्ति संवेगो से निर्देशित होता है एवं एक विचारक (Philosopher) तर्क से अपनी दिशा लेता है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त स्पिनोजा तर्क संगत कार्य करने वाले व्यक्ति के लिए एक अन्य लक्षण भी बताता है। उनके अनुसार तर्क संगत कार्य करने वाला व्यक्ति अन्य व्यक्तियो के क्रोध, घृणा एव विद्वेष के बदले में उसे सहानुभूति एवं प्रेम देता है।[1] उसके लिए घृणा के बदले घृणा पूर्ण आचरण करना दुष्टता है। जो व्यक्ति घृणा के बदले मे प्रेम देता है, वह अपने जीवन को बडे ही आनन्द एवं आत्म विश्वास से व्यतीत करता है।[2] इस प्रकार तर्क

---

[1] The man who lives under the guidance of reason cannot but return love and kindness for other men's hatred, anger, contempt etc
- Ethics. Prop 46.

[2] But he who strives to conquer hatred with love, fights his battle in joy and confidence; he with stands many as easily as one, and has very little need of fortune's aid. - Ethics scholium to Pro. 46.

अनेकता मे एकता पैदा करता है तथा इसके द्वारा कोई ऐसी स्थिति नहीं पैदा हो सकती जिससे समाज में घृणा एवं विद्वेष पैदा हो सके। तर्क पूर्ण आचरण सामान्य सिद्धान्त के पूर्णतया अनुकूल होता है। इसके साथ ही साथ स्पिनोजा का तर्कपूर्ण मनुष्य आशा एव भय से भी प्रभावित नही होता।[1] उसका आचरण सामान्य सिद्धान्तो के अनुकूल एव मानव कल्याणकारी होता है। इस प्रकार स्पिनोजा का आदर्श पूर्ण मनुष्य (Virtuous man) नियतिवाद का अनुवर्तन करते हुए स्वतन्त्रता की पूर्ण स्थिति मे रहता हुआ, तर्क सगत जीवन व्यतीत करता है। ऐसे व्यक्ति के लिए मृत्यु की बिल्कुल कम चिन्ता प्रत्युत नैतिक जीवन व्यतीत करने की अधिक चिन्ता होती है।[2]

यह तर्क पूर्ण व्यक्ति के व्यक्तिगत क्षेत्र की बात है। जहॉ तक उसके सामाजिक क्षेत्र की बात है–एक तर्कपूर्ण जीवन व्यतीत करने वाला व्यक्ति एकान्तवास, जहॉ वह स्वतन्त्र होता है, की अपेक्षा सामान्य नियमो एव

---

[1] But at the same time a man of reason would not like to save his life by fruad or deception; because reason cannot prescribe deception.
- Ethics Prop. 72

[2] Hence the virtuous man thinks least of death and most of life accroding to reason.
- Ethics Prop. 67

कानून के अन्तर्गत सचालित राज्य मे अपने को अधिक स्वतन्त्र मानता है। यह बात विरोधपूर्ण अवश्य लगती है किन्तु वस्तुत ऐसी नही है। कानून एव नियम केवल उसकी स्वतन्त्रता का अपहरण करता है जो इसका अनुपालन एव इसके अनुसार नही चलना चाहता किन्तु तर्क संगत आचरण करने वाला व्यक्ति, जो कानून एव नियमो का अनुपालन एव इसके अनुसार चलना चाहता है, उसके लिए कानून एव नियम स्वतन्त्रता के बाधक नही है। ऐसा तर्कपूर्ण मनुष्य ही आदर्श समाज की स्थापना कर सकता है। ऐसा व्यक्ति जिस प्रकार अपने आनन्द का प्रयास करता है, उसी प्रकार वह दूसरे के भी आत्मानन्द की चिन्ता करता है।[1] इस प्रकार स्पिनोजा की नियतिवादी विचारधारा के अनुसार तर्क पूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए आत्म–आनन्द की अनुभूति ही स्वतन्त्रता या मुक्ति (freedom) है एव यही मानव का परम् श्रेयस एव परम लक्ष्य है तथा यह स्व हिताय के साथ–साथ बहु हिताय भी है।

---

[1] Virtuous men alone can form the ideal society; because in so for as men live under the guidance of reason they necessarily agree in nature, and the greatest good of those who follow virtue is common to all.
- Ethics Prop 35 & 36.

इस प्रकार स्पिनोजा की बन्धन एवं मुक्ति (Bondage and freedom) सम्बन्धी विचारधारा पर उपर्युक्त प्रकारेण विचार करने से विदित है कि स्पिनोजा की यह विचारधारा उसके ईश्वर–प्रेम, आत्म–प्रेम एव तर्कपूर्ण जीवन पर आधारित है। स्पिनोजा एक दार्शनिक होने के साथ धार्मिको से कुछ माने मे अधिक ईश्वर–प्रेमी है। अन्तर केवल इतना है कि धार्मिको का ईश्वर अंधविश्वास से भी प्रभावित हो सकता है किन्तु स्पिनोजा का ईश्वर पूर्णतया तार्किक दृष्टि से अंधविश्वास से दूर है। स्पिनोजा अपनी ईश्वरीय व्यवस्था पर आधारित नियतिवाद के द्वारा मानसिक शान्ति प्राप्त कराता है, जो मानव का परम लक्ष्य है। चूँकि नियतिवाद नैतिक और मनोवैज्ञानिक दोनों ही दृष्टियों से मानसिक सन्तोष की ओर उत्प्रेरित करता है। इसलिए इससे स्वत· मानसिक शान्ति का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। ऐसे मे स्पिनोजा के नियतिवाद की आलोचना करते हुए इसके द्वारा स्वतन्त्रता बाधित होने तथा स्वतन्त्रता के बाधित होने की स्थिति मे नैतिक एव आध्यात्मिक जीवन की ओर अग्रसरण में बाधा पडने की आलोचको द्वारा की गयी शका भी यथापूर्व वर्णित सारगर्भित एव तथ्य पूर्ण नहीं है। स्पिनोजा के अनुसार आध्यात्मिकता की ओर मनुष्य का उन्नयन और हृदय परिवर्तन उसके संकल्प की स्वतन्त्रता के दंभ से नही हो

सकता है। यह परिवर्तन ज्ञान से ही हो सकता है। ज्ञान का परम श्रोत ईश्वर के प्रति बौद्धिक प्रेम ही है। आध्यात्मिक व्यक्ति का नैतिक उत्कर्ष स्वाभाविक है। उसमे स्वतन्त्रता के अहकार का पूर्णतया अभाव होता है। स्पिनोजा के अनुसार मानव मुक्ति या स्वतन्त्रता (freedom) ईश्वरीय कृपा (Blessedness) तथा ईश्वर के प्रति शाश्वत् एव स्थिर प्रेम से ही सभव है। यह ईश्वरीय कृपा मन की शान्ति के अतिरिक्त कुछ नही है तथा यह मन–शान्ति ईश्वर साक्षात्कार से उत्पन्न होती है।

स्पिनोजा का नियतिवाद साधक के मन मे स्वतन्त्रता का अहंकार नही पैदा करता क्योकि उसका साधक ज्ञानी होता है। स्वतन्त्र सकल्प पर आधारित प्रयत्नसाध्य नैतिकता अहंकार को जन्म देती है। अहकार मनुष्य को अन्तत अवनति की ओर ले जाता है। इसके विपरीत स्पिनोजा का नियतिवाद अहकार को दूर करके नैतिक जीवन को आध्यात्मिक जीवन में रूपान्तरित करता है। इस अवस्था में मनुष्य की चेतना का अहंभाव नही बल्कि ईश्वर-प्रेम का प्रस्फुटन होता है। यही मनुष्य के जीवन का अन्तिम आदर्श है। यही उसकी पूर्णता है। इसी मे मानव जीवन की सच्ची मुक्ति (freedom) है।

इस प्रकार शकर एव स्पिनोजा की बधन एव मोक्ष सम्बन्धी यथोक्तव्याख्या पर सम्यक रूप से प्रकाश डालने से यह सुस्पष्ट है कि शकर एवं स्पिनोजा दोनो बन्धन का कारण अज्ञानता ही मानते है। इस अज्ञानता को दूर करने के उपाय पर दोनो के विचारो पर दृष्टिपात करने से यह भी विदित हुआ कि इस अज्ञानता का निराकरण होने पर ही मोक्ष या मुक्ति या स्वतन्त्रता (freedom) की प्राप्ति होती है। यह किसी अप्राप्त की प्राप्ति न होकर 'प्राप्तस्य प्राप्ति" अर्थात् प्राप्त की प्राप्ति ही है। यही सक्षेप में इन दोनों का सांसारिक दु खों एव भौतिकीय मरीचिका से सतप्त मानव के लिए शुभ संदेश है। इसकी प्राप्ति ही ईश्वर–प्राप्ति, आत्म प्राप्ति, परमानन्द एव परम शुभ आदि की प्राप्ति है। यही दोनो का (शंकर और स्पिनोजा का) परम श्रेयस एवं स्व हिताय के साथ–साथ विश्व हिताय हेतु उन्मुख होकर सत्यं शिवं एव सुन्दर की प्राप्ति भी है।

अध्याय 6

उपसंहार

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के अन्तर्गत–शकर और स्पिनोजा के सम्बन्ध मे विचार करने के पश्चात् अब आवश्यक है कि इन दोनो की विचार धाराओ का एक समालोचनात्मक रूप प्रस्तुत किया जाय। एतदर्थ शाश्वत् सत् (ब्रह्म, द्रव्य या ईश्वर), बाह्म जगत, आत्मा, जीव, बुद्धि, ज्ञान, अज्ञान, बन्धन, मोक्ष आदि के सम्बन्ध मे इनकी विचारधाराओ मे कौन–कौन सी समानतायें एव असमानतायें है तथा इनका समन्वयात्मक रूप क्या होगा तथा उसका मानव जीवन के व्यावहारिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक जीवन में कहॉ तक योगदान है आदि विषयो पर विचार किया जाय ऐसे में इस अध्याय मे इन विषयो पर विचार करना समीचीन होगा। पूर्व पृष्ठो मे शकर एव स्पिनोजा के ब्रह्म एव द्रव्य आदि के बारे मे यद्यपि अलग–अलग व्याख्या की गयी है किन्तु यहॉ हम ब्रह्म एव द्रव्य तथा दोनों के जगत, मोक्ष आदि के बारे में समानता एव असमानता को प्रदर्शित करने के लिये इन दोनो के ब्रह्म एव द्रव्य आदि सम्बन्धी विचारों पर सक्षेपत· विचार करते हुए इन पर समालोचनात्मक रूप प्रस्तुत करेगे।

शङ्कर और स्पिनोजा के ब्रह्म और द्रव्य एक दूसरे के रूप में :–

शकर अद्वैतवादी है। उनका ब्रह्म ही एकमात्र सत है। इस ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य बाह्य जगत् आदि की परमार्थत सत्ता नही है।[1] ब्रह्म ही आत्मा है। आत्मा के रूप मे भी एकमात्र ब्रह्म ही सत् है।[2] वेद, उपनिषद एव स्मृतियो से अपने विचार की पुष्टि करते हुए शंकर ने अपने अद्वैत ब्रह्म की पुष्टि की है।[3, 4] शकर का यह ब्रह्म ही एकमात्र परम अद्वितीय सत् है। अनेक उपाधियॉ उसकी अद्वैतता की ही पुष्टि करती है। उस ब्रह्म की उपाधियॉ एक प्रकार की कल्पना मात्र ही होती है। कठोपनिषद् मे उसके सम्बन्ध मे–वह स्थिर होने पर भी दूर चला जाता है, शयन किये होने पर भी सब ओर जाता है, उस हर्ष और

---

[1] सर्वोहि लोक व्यवहारो ब्रह्मण्येव कल्पितो न परमार्थत· सन्।
शाकर भाष्य बृह० उप० 1/4/10

[2] "अयमात्मा ब्रह्म"–बृह० उप० 2/5/19

[3] नेह नानास्ति किचन–बृह० उप० 4/4/20

[4] एकमेवाद्वितीयम्–छ0 उ0 6/2/9

विषाद युक्त देव को मेरे, सिवा और कौन जान सकता है इत्यादि उक्तियॉ उस ब्रह्म के मात्र ससारित्व उपाधि की द्योतक है; परमार्थत नही।[1]

शकर के अनुसार मानव परम ज्ञान प्राप्त करके 'यह सब आत्मा ही है' की अनुभूति करता है।[2] उसको ब्रह्म के रूप मे अपने का आभास होता है।[3] यह कार्य स्वरूप आत्मा तथा कारण स्वरूप आत्मा अद्वैत ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नही है।[4] यह पूरा विश्व, ब्रह्माण्ड ब्रह्म ही है।[5] शकर के अनुसार ब्रह्म की अद्वितीय सत्ता उससे अतिरिक्त कुछ नही है।[6] अन्य सब उसी ब्रह्म का ही प्रतिपादन करने वाले है।[7] इस प्रकार उपनिषदों की इन उक्तियो के द्वारा शकर

---

[1] "आसीनोदूर व्रजति शयानो याति सर्वत ।
करस्त मदाभद देव मदन्यो ज्ञातुमर्हति"
—(क0 उ0 1/2/21)
इत्येवमादिश्रुतिभ्य उपाधि वशात्ससारित्वं न परमार्थत । स्वतोऽसंसार्येव।
—शाकर भाष्य बृह० उप० 1/4/6

[2] एकमेवाद्वितीयम्—छ० उ० 6/2/1

[3] तत्वमसि—छा० उ० 6/8/16

[4] नेति—नेति—बृ० उ० 2/3/6

[5] ब्रह्मैवेदममृतम्—मु० उ० 2/2/11

[6] नान्यदतोस्ति द्रष्ट्र—(बृ० उ० 3/8/11)

[7] तदेव ब्रह्म त्व विद्धि—के0 उ0 1/4

अपने अद्वैत ब्रह्म की पुष्टि करते हैं।[1] शकर का ब्रह्म ही मनन करने वाला, ज्ञाता, कर्ता ओर विज्ञानात्मा पुरूष है।[2]

शंकर के बह्म सम्बन्धी उपर्युक्त विचारों का उल्लेख करने के बाद हम स्पिनोजा के भी द्रव्य या ईश्वर सम्बन्धी उन उक्तियो का उल्लेख करेगे जो शकर के उपर्युक्त ब्रह्म से बहुत कुछ समानता रखती है। इस दृष्टि से हम देखते है कि स्पिनोजा का द्रव्य निरपेक्ष एव आसीम है। उसे किसी चीज की अपेक्षा नहीं है। वह अविभाज्य है। वह अपरिवर्तनशील है। वह विशुद्ध है।[3] स्पिनोजा का द्रव्य या ईश्वर ही यह जगत् है। सारा वाह्य जगत उसी ईश्वर का अश है। सारे पर्याय ईश्वर के अंग है। इसके साथ ही साथ इन्द्रियो के द्वारा अनुभवगम्य जगत् स्पिनोजा के लिए मात्र कल्पना मात्र है।[4] ईश्वर ही

---

[1] इत्यादिवाक्याना तद्वादित्वात्–बृ० उ० शकर भाष्य 1/4/7

[2] मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरूष"
प्रश्न उ० – 4/9

[3] Substance is, as already shown, pure, indeterminate, unchangeable, indivisible absolutely infinite Being.
- Spinoza in the light of the vedanta
- Chapter V, Attributes, P 154 , - R. K. Tripathi

[4] Thus it would not be self-contradictory to say on the one hand that the world is in God or that modes are part of God and on the other that the world of the senes is only in imagination
- spinoza in the light of the vedanta
- substance P 128— - R. K. Tripathi.

एकमात्र सत् है। जगत् की सारी वस्तुएँ उसी से नि·सरित है एव यह भी उसी के समान है। वस्तुत मात्र ईश्वर ही एकमात्र पूर्णसत् है ओर विश्व की सारी चीजे वही (ईश्वर) है। यह केवल मानवीय सोच की कमी या उसके अभिव्यक्ति की कमी है कि वह किसी को पहले किसी को बाद मे किसी को पूर्ण और किसी को अपूर्ण आदि के रूप मे अपने मानसिक स्तर के अनुसार सोचता एव कल्पित करता है। वस्तुत ईश्वर ही आदि बिन्दु और सर्वस्व है और यह सारा जगत् उससे नि·सरित होकर उसी का रूप है।[1]

इस प्रकार स्पिनोजा के अनुसार ईश्वर अनन्त है। उसके द्वारा यह जगत् निःसरित होकर अनेक रूपो मे द्रष्टव्य है। यह नानारूपात्मक जगत् ईश्वर ही है। ईश्वर के अतिरिक्त अन्य की सत्ता नही है। स्पिनोजा का ईश्वर या द्रव्य निर्विशेष है। उसके गुणो का वर्णन करना भाषा द्वारा सम्भव नही है क्योंकि ईश्वर के किसी गुण का वर्णन करने से उसकी अद्वैतता बाधित होती है। इस प्रकार स्पिनोजा अपने द्रव्य अथवा ईश्वर का अभिधान "नेति–नेति" के

---

[1] It will be easily conceded that the things immediately produced by God are most perfect, but if teleology is admitted, that is, "if those things which were made immediatly by God enable him to attain his end, then the things which come after, for the sake of which the first were made, are necessarily the most excellent of all
- Ethics I, Appendix.

रूप मे करता है। स्पिनोजा का कथन है कि प्रत्येक निर्वचन निषेधात्मक है।[1] इस प्रकार स्पिनोजा का ईश्वर भी वेदान्त की तरह अनिर्वचनीय है।

स्पिनोजा का यह द्रव्य या ईश्वर ही पूरा विश्व है। सारी सृष्टि ईश्वर का रूप है। इस प्रकार पूरे विश्व को ईश्वरमय मानकर ईश्वर के रूप मे ही देखना स्पिनोजा का सर्वेश्वरवाद है जिसके अनुसार सब कुछ ईश्वरमय है और ईश्वर ही सब कुछ है। स्पिनोजा की यही विचार धारा उसके अद्वैतवाद का आधार है। अपनी इसी विचारधारा के द्वारा स्पिनोजा अपने द्रव्य को शाश्वत् मानने के साथ–साथ अन्य वाह्य जगत को भी शाश्वत् मानते हुए द्वैत के विरोधो से अपने दर्शन को बचा सका।[2]

स्पिनोजा का ईश्वर नियतिवादी व्यवस्था देता है जिसके अनुसार मनुष्य सारे कार्यो का अनुपालन स्वेच्छा से करता है। उसके लिए किसी प्रकार के वाह्य दबाव की अपेक्षा नही होती।उसका लक्ष्य मानव प्रेम होता है। यह

---

[1] Determinatio negatio est.

[2] This is the only way in which spinoza's two apparently self-contradictory statements, namely, that nothing except substance is eternal and that mind is eternal, can be harmonised

—spinoza in the light of the vedanta

—the eternity of man, P. 301

—R. K. Tripathi

मानव प्रेम ही उसका आत्मानन्द है। ऐसा स्पिनोजा का मानव वेदान्त के मोक्ष–प्राप्त व्यक्ति के समान ही होता है। स्पिनोजा का आत्मानन्द प्राप्त व्यक्ति बिना कानूनी आदि व्यवस्था के पूरे विश्व को अपना समझता है और मानवीय महान गुणो के द्वारा वह परमानन्द की अनुभूति करता है। इस बात का उल्लेख स्पिनोजा ने बडे विस्तार से अपने ग्रन्थ ETHICS मे किया है।[1]

उपर्युक्त प्रकारेण शकर एव स्पिनोजा के परम् सत् (ब्रह्म एवं द्रव्य या ईश्वर) पर विचार करने से विदित होता है कि दोनो का ब्रह्म एवं द्रव्य बहुत कुछ माने मे समान है। दोनो ने अपने–अपने सत् क्रमशः ब्रह्म एव द्रव्य को निम्न प्रकारेण एक समान अभिहित किया है—

(क) दोनो ने ब्रह्म एव द्रव्य को स्वतन्त्र माना है। इसकी सत्ता के लिए किसी अन्य की अपेक्षा नही की गयी है।[2]

---

[1] "He who chooses to avenge wrongs with hatred is assuredly wretched. But he who strives to conquer hatred. with love, fights his battle in joy and confidence; he withstands many as easily as one, and has very little need of fortune's aid. Those whom he vanquishes yield joyfully, not through failure, but through increase in their powers.
—Ethics scholium to Pro 46

[2] A being absolutely in finite necessarily exists also.
- Ethics I Prop I

(ख) दोनो का ब्रह्म एव द्रव्य अपनी सत्ता के लिये किसी अन्य के ज्ञान की अपेक्षा नही रखता है।[1] अस्तु दोनो ने इसे स्वत सिद्ध एवं स्वय ज्योति माना है।

(ग) दोनो ने अपने परम् सत् को स्वयभू के रूप मे स्वीकारा है। स्वयभू न होने पर इसकी अद्वैतता बाधित होगी एव अगर इनका कोई अन्य कारण होगा तो उसका भी कोई अन्य कारण ढूढना पडेगा। ऐसे मे जहॉ एक ओर अनावस्था दोष की सभावना होगी वही इसकी स्वतन्ता भी बाधित होगी और यह परतन्त्र होगा। इस दृष्टि से यथोक्त दोनो ने अपने ब्रह्म एव द्रव्य को स्वयभू माना है।[2]

(घ) दोनो ने अपने ब्रह्म एवं द्रव्य को निरपेक्ष माना है अर्थात् ये अपने ज्ञान के लिए, अपनी सत्ता के लिये किसी की अपेक्षा नही करते।

---

[1] The essence of substance involves existence, substance exists necessarily - Ethics I, Prop. 7,11,

[2] That I define God as a Being to whose essence belongs existence I infer seveial of His properties, namely that he exists necessarily, that He is unique immutable, infinite etc.-Corressopndence

L X X X III P. 365.

(ङ) दोनो ने अपने ब्रह्म एव द्रव्य को पूर्ण माना है। शंकर जहॉ अपने ब्रह्म को आप्तकाम एव पूर्ण कहा है वही स्पिनोजा का द्रव्य अथवा ईश्वर भी सभी कामनाओं से रहित आप्तकाम एव पूर्ण है।[1]

(च) दोनो ने अपने ब्रह्म एव द्रव्य को नित्य एव शाश्वत् माना है। यदि वह नित्य न होगा तो अपूर्ण एव विनाशशील होगा तो ऐसे मे उसकी (ब्रह्म एवं द्रव्य की) अद्वैतता सिद्ध न होगी। इस दृष्टि से शकर और स्पिनोजा दोनों ने अपने परम् सत् को नित्य माना है।[2]

(छ) शकर और स्पिनोजा दोनो ने क्रमश अपने ब्रह्म एवं द्रव्य को अपरिच्छिन्न या अपरिमित माना है।[3] अगर वह परिमित अथवा परिच्छिन्न होगा तो इसका अर्थ होगा कि वह किसी पर आश्रित है एव आश्रित होने पर वह अद्वितीय एव परम सत् नही हो सकेगा। अस्तु दोनो ने निर्विवाद रूप मे अपने ब्रह्म एव द्रव्य को अपरिमित एव अपरिच्छिन्न माना है।

---

[1] न अनावाप्तम् अप्राप्तम् अवाप्तव्य प्रापणीय
श्रीमद्भगवद्गीता शांकर भाष्य 3/22

[2] एनम् आत्मान नाशयितु न उत्सहन्ते। तस्माद् नित्य
श्रीमद्भगवद्गीता शाकर भाष्य–2/24

[3] No attribute of substance can be truly conceived, from which it would follow that substance can be divided into parts.
- Ethics I, Prop. 10

(ज) शकर एव स्पिनोजा दोनो ने अपने ब्रह्म एव द्रव्य को–'नेति–नेति' के रूप मे स्वीकारा है। यद्यपि 'नेति–नेति' कहने में कुछ भिन्नता अवश्य है। जहॉ स्पिनोजा का नकारात्मक अभिधान का अभिप्राय है कि "प्रत्येक निर्वचन निषेधात्मक होता है"[1] वही शकर का नकारात्मक अभिधान का अभिप्राय सारे जगत् की चीजो को नेति (न + इति, अर्थात् यह नही)–नेति (न + इति, अर्थात् यह नही) कह करके सबसे परे ब्रह्म को बताना है।[2] नेति–नेति से उनका अभिप्राय यह भी है कि निर्वचन करने पर भाषा की सीमा के कारण उसका वास्तविक अभिधान सम्भव नही है। इस दृष्टि से भी शकर ने ब्रह्म को "नेति--नेति" कहा है। फलत शकर और स्पिनोजा का ब्रह्म एवं द्रव्य को "नेति–नेति" कहना भी बहुत कुछ माने मे समान है।

(झ) शकर एव स्पिनोजा दोनो ने अपने ब्रह्म एवं द्रव्य को अद्वितीय माना है।

---

1 Determinatio Negatio est

2 नेति–नेति–बृ० उ० 2/3/6

दोनो के अनुसार परम् सत् के अतिरिक्त अन्य किसी की र नही है।[1] अन्य किसी की सत्ता मानने पर वह निरपेक्ष एव अद्वितीय नहीं सकेगा। साथ ही साथ द्वैतवाद जैसी दार्शनिक विकट समस्या से बचा भी जा सकेगा। इस दृष्टि से दोनो ने अपने ब्रह्म एव द्रव्य को अद्वितीय माना है।

(ञ) दोनो ने अपने ब्रह्म एव द्रव्य को अन्तर्यामी माना है। अर्था यह सृष्टि के कण–कण में व्याप्त है।[3] यह सब में है और सब कुछ इसमें है इससे अर्थात् ब्रह्म और द्रव्य से अतिरिक्त कुछ नही है।

(ट) शकर एव स्पिनोजा दोनों ने अपने ब्रह्म एव द्रव्य को अनिर्वचनीय माना है। दोनो ने वाणी और भाषा के द्वारा उसका निर्वचन करना असम्भव बताया है। यद्यपि सारे गुण का वही अधिष्ठान है। फिर भी उसका

---

[1] God is the sole and whole cause; 'sole' because there is nothing outside him and 'whole' because he does not depend on anything else outside his own nature.

—Ethics II, scholium to prop. 3

[2] सर्वं हि नानात्व ब्रह्मणि कल्पितमेव ... एकमेवाद्वितीयम–
(छा० उ० 6/2/1) इत्यादि वाक्य–शतेभ्य·।
–शाकर भाष्य बृ० उ० 1/4/10

३ "सर्वत्रगं व्योमवद् व्यापि"
–शाकर भाष्य 12/3

(ब्रह्म एव द्रव्य का) निर्वचन उन गुणो के द्वारा करना सम्भव नही है। इस दृष्टि से दोनो ने अपने परम सत् ब्रह्म एव द्रव्य को अनिर्वचनीय कहा है।

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि शंकर का ब्रह्म एव स्पिनोजा का द्रव्य अथवा ईश्वर बहुत कुछ माने मे एक समान अभिहित किया गया है। दोनो ने उसकी अद्वैतता को स्वीकारा है। यद्यपि दोनो ने ब्रह्म एवं द्रव्य का एक समान अभिधान किया है फिर भी ऐसा अभिधान करने में मूलत कुछ भिन्नताये भी है। शंकर अपने अद्वैत ब्रह्म को एकमात्र सत मानते हुए व्यावहारिक जगत को केवल विरोधियो को सन्तुष्ट करने के लिए स्वीकारा है। किन्तु इनका यह स्वीकारना भी केवल व्यावहारिक दृष्टि से है न कि पारमार्थिक दृष्टि से। इसीलिए उन्होने बडे जोरदार शब्दो में एकमात्र ब्रह्म को सत् तथा जगत् को मिथ्या कहा है।[1] विरोधियों को सन्तुष्ट करने की दृष्टि से उन्होने माया का सहारा लिया एव मायोपहित ब्रह्म को ईश्वर के रूप में स्वीकारते हुए जगत् की रचना व्यावहारिक दृष्टि से बतायी। वस्तुतः उसकी सत्ता उनके लिए मिथ्या या असत् ही है। इसके विपरीत स्पिनोजा का द्रव्य या ईश्वर एकमात्र सत् है किन्तु जगत् मिथ्या या काल्पनिक नही है। उन्होने अपने विरोधियो को व्यावहारिक

---

[1] "ब्रह्म सत्य जगनिमथ्या"।

जगत् के सम्बन्ध मे उत्तर देते हुए यहॉ तक कहा है कि व्यावहारिक जगत से मानव को दूर रखकर मै संन्यासी जैसा जीवन व्यतीत करने का समर्थक नही हूँ। बल्कि मात्र द्रव्य या ईश्वर को सत् मानते हुए स्पिनोजा सयमित जीवन व्यतीत करने का पक्षधर है। वह भौतिक जगत् को द्रव्य में समाहित करते हुए केवल द्वैतवाद की दार्शनिक विभीषिका से बचना चाहता है। इसीलिए उसने अपने पडोसी या किसी अन्य को बिना बाधित किये हुए तार्किक रूप से थिएटर एव सगीत का आनन्द लेने तथा प्रकृति के सौन्दर्य एव खाने—पीने की सुख—सुविधा को तिरष्कृत न करके इन सबको स्वीकारा है।[1]

इस प्रकार स्पिनोजा भौतिक जगत् को बिना तिरष्कृत किये हुए तर्कपूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए पूरे वाह्य जगत् को ईश्वरमय मानता हुआ उसमे सामजस्य स्थापित करते हुए सयमित जीवन व्यतीत करने का समर्थक है।

---

[1] I say it is the part of a wise man to refresh and recreate himself with moderate pleasant food and drink, and also with perfumes, with the soft beauty of growing plants, with dress, with music, with man sports, with theatres, and the like, such as every man may make use of without injury to his neighbour.

- Ethics IV, schalium II to Prop. 45.

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि शकर का ब्रह्म और स्पिनोज का द्रव्य या ईश्वर आपस मे बडी समानता रखते हैं। उनका अभिधान भी प्रायः यथोक्त एक सा हुआ है किन्तु यत्किंचित भिन्नता भी है। यह भिन्नता भी बहुत कुछ माने मे पौरस्त्य एव पाश्चात्य सास्कृतिक परिवेश के कारण है। हमारे भारतीय दार्शनिको ने प्राय एक स्वर से भौतिक जगत् को तिरष्कृत करते हुए आध्यात्मिक जगत् को वरीयता एव परम श्रेयस माना है किन्तु पाश्चात्य दार्शनिको में कुछ को छोडकर प्राय· अधिकांश द्वारा भारतीयों के समान व्यावहारिक जीवन को तिलांजति नही दी गयी है। यद्यपि स्पिनोजा पाश्चात्य दार्शनिको मे बहुत कुछ माने मे संन्यासी के रूप में दार्शनिक है फिर भी पाश्चात्य सस्कृति का उस पर भी प्रभाव पडना स्वाभाविक ही नहीं अपितु अनिवार्य भी है। इसी कारण भौतिक वाह्य जगत् को बिना तिरष्कृत किये हुए उसको ईश्वर से नि सरित मानते हुए उसी की छाया के रूप में उससे (ईश्वर से) तादात्म्य[1] अनुभव करते हुए उसमे बिहार करना स्पिनोजा को मान्य है।

---

[1] "Spinoza who was a true Philossopher- did not believe in transformation, but in freedom, not in unison but in identity".
- Spinoza in the light of the Vedanta
- The etemity of man, P 313, - R. K. Tripathi.

इस प्रकार हम देखते है कि शकर और स्पिनोजा का क्रमश· ब्रह्म एव द्रव्य या ईश्वर लगभग बहुत कुछ अर्थो में समान है। यत्किंचित विचारो की भिन्नता मात्र पाश्चात्य एव पौरास्त्य के कारण माना जा सकता है। इन विभिन्नताओ के बावजूद भी शकर और स्पिनोजा के ब्रह्म और द्रव्य सम्बन्धी विचारो मे एकरूपता को दृष्टि में रखते हुए अगर यह कहा जाय कि स्पिनोजा शकर के ब्रह्म को द्रव्य या ईश्वर के रूप मे घोषित करने के लिए शंकर तुल्य पाश्चात्य दार्शनिक के रूप मे अवतरित हुआ, तो यह उक्ति कोई अयथावत् न होगी।

शकर एव स्पिनोजा के ब्रह्म एवं द्रव्य या ईश्वर पर समालोचनात्मक विवेचना के बाद अब हम इनके बाह्य जगत सम्बन्धी विचारो पर सक्षेपत दृष्टिपात करेंगे।

शङ्कर और स्पिनोजा का बाह्य जगत् :–

शकर की अद्वैतवादी विचारधारा के अनुसार एकमात्र ब्रह्म ही पारमार्थिक सत् है। ऐसे मे प्रश्न उठता है कि क्या यह मेरा व्यावहारिक जगत् एवं उसकी अनेक उपलब्धियॉ आकाश कुसुम एवं बन्ध्या पुत्र की तरह पूर्णतया असत् है? शंकर का उत्तर है–कदापि नहीं। वे जगत् को यद्यपि

परमार्थत नही स्वीकारते, इसको वरीयता नही देते, इसमे लिप्त नही होना चाहते, किन्तु यथोक्त व्यावहारिक दृष्टि से इसकी सत्ता उन्हें शतश स्वीकार है। शकर जैसा कि पूर्व पृष्ठों पर वर्णित किया जा चुका है, व्यवहार रूप में जगत् को पूर्णतया स्वीकारते है। सामान्य व्यवहार मे उन्होने भी युद्ध मे मारे जाने पर स्वर्ग की प्राप्ति और जीते जाने पर पृथ्वी के राज्य का भोग एव इस प्रकार युद्ध करने मे दोनोतरहसेलाभ की बात सामान्य व्यक्तियो की तरह अभिहित किया है।[1] इस प्रकार श्रुतियो एव स्मृतियो मे वर्णित मानव की जगत् सम्बन्धी अभिप्रायो एव अभीष्टो पर अपना भाष्य प्रस्तुत करते हुये शकर ने प्रायः सासारिक व्यक्तियो के अभीष्टो को बहुत कुछ उनके अनुसार स्वीकार किया है। यद्यपि शकर ने इनको अद्वैत ब्रह्म की ओर उन्मुख हो करके ही स्वीकारा है फिर भी सामान्यतया व्यावहारिक जगत् उनके लिए पूर्ण एव पारमार्थिक ज्ञान पर्यन्त बिल्कुल स्वीकार है। ऐसे मे उनके द्वारा जगत् का मिथ्या कहा जाना मात्र इस बात का द्योतक है कि जगत् मे लिप्त होकर काम, वासनाओं में

---

[1] हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्ग हत सन् स्वर्ग प्राप्स्यसि जित्वा वा कर्णादीन शूरान् भोक्ष्यसे महोम्।
उभयथा अपि तव लाभ एव इति अभिप्राय ।
श्रीमद्भगवद्गीता शाकर भाष्य 2/37,

उलझकर मनुष्य कहीं अपने परम लक्ष्य से भ्रमित न हो जाय, इसीलिए उन्होंने व्यावहारिक जगत् को वरीयता नही दिया एव इसे मिथ्या या माया कहकर इसको वरीयता न देकर गौण माना है।

शकर ने अन्य दार्शनिको की तरह सृष्टि रचना की विस्तृत व्याख्या की है। इसकी रचना भी उन्होने मायोपहित ब्रह्म रूप ईश्वर द्वारा बताया है। सृष्टि रचना के समय अद्वैत, असीमित एव अपरिच्छिन्न ब्रह्म अनेक शक्तियो एव गुणो से युक्त होकर ईश्वर के रूप मे इस सृष्टि की रचना करता है।[1] इस प्रकार सक्षेप मे यही कहा जा सकता है कि शकर व्यावहारिक जगत को अन्य दार्शनिको की तरह सामान्यतया पूर्णत स्वीकार किया है।

स्पिनोजा के अनुसार भी यह जगत् शंकर के समान व्यावहारिक दृष्टि से स्वीकार करने के साथ–साथ उनसे (शकर से) कुछ और आगे जाकर

---

[1] पिता जनयिता अहम् अस्य जगतो माता जनयित्री, धाता कर्मफलस्य प्राणिभ्यो विधाता, पितामह· पितु· पिता, वेद्यं वेदितव्यम्, पवित्र पावनम्, ओंकारः च ऋक्सामयजु एव च।
श्रीमद्भगवद्गीता शांकर भाष्य 9/17

इसका आनन्द लेना भी उन्हे अनुमन्य है।[1] स्पिनोजा के लिए यह जगत् शकर के समान मिथ्या नही है। उनके अनुसार यह जगत् ईश्वर से निःसरित होकर उस जैसा ही है। स्पिनोजा ने जगत् की नाना वस्तुओ का आनन्द लेना, सयमित रूप से स्वीकार किया है।[2] वह चिदचिद्रूप जगत् की महत्ता को स्वीकारता है। उसे नाना पर्यायो से युक्त चित् अचित् रूप जगत् विशुद्ध, अपरिमित एव अपरिच्छिन्न द्रव्य के समान ही लगभग स्वीकार्य है। स्पिनोजा का कथन है कि पर्यायो से युक्त चित् अचित् जगत् के सहयोग से ही ईश्वर अवतरित होकर कर्म करने मे समर्थ होता है।[3] स्पिनोजा का नाना पर्यायो से युक्त चिदचिद्रूप जगत् सर्वथा सदाचार युक्त जीवन व्यतीत करने हेतु वरेण्य है। इस प्रकार हम देखते है कि शकर और स्पिनोजा बाह्य जगत् को भी लगभग एक जैसे रूप मे स्वीकारा है। अन्तर केवल दोनो में पौरस्त्य एव

---

[1] Similarly, honour, favour, and self complacency are not opposed to reason. It is thus evident that spinoza was not a stoic but a believer in what the Gita calls even temperate life (yuktaharavihara),

- Ethics IV props, 51, 52, 53

[2] "The virtuous man cares for the pleasure of the whole body rather than for that of only one part, and desires a greater future good before a lesser present one."

- Ethics Prop. 60, 66

[3] "In fact, the unreal alone can help us, because the absolute in it self is inactive."———

पाश्चात्य संस्कृति की विचार धाराओ से प्रभावित होना है। जहाँ पौरस्त्य अधिकाश भारतीय दार्शनिको को नानावासनाओ से युक्त दु ख पूर्ण यह जगत् त्याज्य है, वहीं पाश्चात्य दार्शनिको के लिए यह बहुत कुछ माने में वरेण्य है। किन्तु स्पिनोजा ऐसा पाश्चात्य दार्शनिक है जो यद्यपि संन्यासी सा जीवन व्यतीत करने की बात करता है किन्तु उसका यह जीवन तर्कपूर्ण एव सदाचार युक्त सद्गुणी का जीवन है एव इन्हे यह व्यावहारिक जगत् यथोक्त सदाचार एव भविष्य के महान शुभ को बिना बाधित किये हुए तर्क सगत रूप मे ही सर्वथा स्वीकार है।

शकर ने जगत् को व्यावहारिक रूप मे स्वीकार किया है किन्तु परमार्थत उनके लिये यह असत् ही है एव स्पिनोजा बाह्य जगत को द्रव्य या ईश्वर के रूप मे स्वीकारते हुए इसे सत् रूप मे माना है किन्तु इन्हें भी अन्तत. नाना पर्यायो से युक्त चिदचिद्रूप जगत् से आगे नित्य एवं शाश्वत द्रव्य या ईश्वर का आनन्द ही वरेण्य एव श्रेयष्कर है। ऐसे मे यह सुस्पष्ट है कि शकर और स्पिनोजा यद्यपि चिदचिद्रूप जगत् के बारे मे मूलत कुछ भिन्नता रखते है किन्तु परमार्थत दोनो का लक्ष्य इस भौतिक जगत् से आगे जाकर ईश्वरानन्द

-Cogitata; "For being considered merely as being does not affect as a substance". — Spinoza in the light of the Vedanta, P. 274
— R.K. Tripathi

या परमानन्द या परम श्रेयस जो कि असीमित, शाश्वत, अपिरिच्छिन्न, पूर्ण, नित्य एव सर्वव्यापी है—की प्राप्ति ही है।

शकर एव स्पिनोजा के बाह्य जगत् पर यथोक्त समालोचनात्मक दृष्टिपात करने के बाद अब हम इनके क्रमश बन्धन—मोक्ष एव बन्धन (Bondage) —मुक्ति (freedom) पर यथापेक्षित समालोचनात्मक रूप से विचार करेंगे।

शंकर और स्पिनोजा का बन्धन और मोक्ष या मुक्ति (freedom) :-

शकर के अनुसार अविद्या के कारण आत्मा भ्रमवश अपने को स्थूल या सूक्ष्म शरीर मान लेता है। यही बन्धन है। इस स्थिति में आत्मा अपने वास्तविक रूप को भूलकर स्वल्प, क्षुद्र एव दुखी जीव के रूप में संसार के नश्वर एवं क्षणभगुर विषयो के पीछे दौड़ने लगता है। इन विषयो की प्राप्ति पर उसे सुख होता है और न पाने पर उसे दुख होता है। वह अपने को शरीर या अन्तकरण समझकर मै पतला हूॅ, मै सुखी हूॅ, मै सन्तप्त हूॅ आदि रूप मे सोचता है। इस प्रकार आत्मा मे अहकार (मै हूॅ) के भाव की उत्पत्ति होती है। इस अहंकार के फलस्वरूप आत्मा अपने को अहम् (मै) समझती हुई शेष ससार

से पृथक समझती है। अतएव यह अहम् शुद्ध आत्मा का रूप न हो करके उसका बन्धन प्राप्त रूप है। आत्मा शरीर की उपाधियो एव इसके सुख–दु ख से अपने को सीमित कर परिच्छिन्न हो जाती है। अन्त करण और इन्द्रियों के सहयोग से प्राप्त होने वाला उसका ज्ञान भी परिच्छिन्न हो जाता है। इस प्रकार सर्वज्ञ एव शुद्ध चैतन्य स्वरूप आत्मा अपरिच्छिन्न रूप को त्यागकर परिच्छिन्न रूप धारण कर लेती है। यही उसका बन्धन है एव इस अवस्था मे वह अपने वास्तविक रूप से दूर हो करके सासारिक रूप मे अपने को मानने लगती है। इस अज्ञान का निवारण ही शकर का वरेण्य परम श्रेयस स्वरूप मोक्ष है।

कर्तादि आदि अनेक कारकों की अपेक्षा वाला ज्ञान एवं कर्म रूप सम्पूर्ण साधन तथा उनसे प्राप्त होने वाला साध्य एव इनके त्रिपुटी स्वरूप इस ससार मे मानव अनेक दु खो को भोगता है। इस संसार रूपी वृक्ष को उखाड़ना पुरूषार्थ या मोक्ष की प्राप्ति है।[1] इस मोक्ष का कारण स्वय ब्रह्म–विज्ञान ही है। शकर इस मोक्ष की प्राप्ति के साधन रूप मे किसी की अपेक्षा नहीं करते। इस सम्बन्ध मे शकर ने बृहदारण्यक उपनिषद के 1/4/7 के अपने भाष्य मे अनेक

---

[1] कर्मबीजोऽविद्याक्षेत्रो ह्यसौ ससार वृक्ष समूल उद्धर्तव्य इति।
शकर भाष्य बृह0 उप0 1/4/7 का पूर्वाश

श्रुतियो का उल्लेख करते हुए बडे ही स्पष्ट रूप मे कहा है कि यह मोक्ष ब्रह्म विज्ञान के अतिरिक्त अन्य किसी साधन से उपलब्ध नही होता।[1]

जैसा कि पूर्व पृष्ठो मे कहा जा चुका है कि शंकर मोक्ष को कोई अप्राप्त की प्राप्ति नही मानते वरन् यह प्राप्त की ही प्राप्ति है। इस प्रकार मोक्ष प्राप्त कर व्यक्ति इस संसार मे निलिप्त भाव से विचरण करता रहता है। ऐसे मे शंकर का मोक्ष देहपात नही है। प्रत्युत मोक्ष प्राप्त व्यक्ति निर्लिप्त भाव से रागद्वेष विवर्जित हो लाभालाभौ जयाजयौ मे समत्व भाव से आचरण करता है। इसी चीज को शकर ने बृहदारण्यक उपनिषद् के 1/4/10 के अपने भाष्य मे

---

[1] न; मोक्ष साधनत्वेनानवगमात्। न हि विदान्तेषु ब्रह्मात्मविज्ञानाद् अन्यत्परमपुरूषार्थ साधनत्वेनावगम्यते। "आत्मानमेवावेत" (बृ० उ० 1/4/10) "तस्मात्तत्सर्वमभवत्" (1/4/10) "ब्रह्मविदाप्नोति परम्" (तै० उ० 2/1/1) स यो ह वै तत्परमं ब्रह्मवेद बह्मैव भवति (मु० उ० 3/2/9) "आचार्यवान्पुरूषो वेद" (छा० उ० 6/14/2)
"तस्य तावदेव चिरम" (6/14/2) "अभय हि वै ब्रह्म भवति य एव वेद"
(बृ० उ० 4/4/25)
इत्येवमादिश्रुतिशतेभ्य·।
शकर भाष्य बृह० उ० (1/4/7)
पृष्ठ (223–224)

विस्तृत रूप से दर्शाया है।[1] यद्यपि शंकर के बन्धन एव मोक्ष सम्बन्धी अध्याय मे इस पर यथापेक्षित विस्तृत विचार किया गया है किन्तु यहॉ पर शकर के बन्धन एव मोक्ष सम्बन्धी कुछ उद्धरणो का उल्लेख मात्र इस दृष्टि से किया गया है कि शकर का बन्धन एव मोक्ष स्पिनोजा के बन्धन एव मुक्ति से कितनी समानता एव कितनी असमानता रखता है। इस दृष्टि से शकर के बन्धन एव इसके मोक्ष पर सक्षेपत विचार करने से स्पष्ट है कि आत्मा का अपने वास्तविक स्वरूप का अज्ञानवश भूलना ही बन्धन है एव साधन–चतुष्टय आदि द्वारा आत्मा का अपने वास्तविक स्वरूप का जानना मोक्ष है और इस मोक्ष को प्राप्त कर मनुष्य यथोक्त यह शरीर धारण किये हुये निर्लिप्त भाव से समत्व भाव प्राप्त

---

[1] एतेन 'सभ्यग्ज्ञानानन्तरमेव शरीपाताभाव कस्मात्?' इत्येतत् परिहृतम्। ज्ञानोत्पत्ते प्रागूर्ध्व तत्काल जन्मान्तर स चिताना च कर्मणाम् प्रवृत्त फलाना विनाश सिद्धो भवति फल प्राप्ति विध्न निषेध श्रुतेरेव।
"क्षीयन्ते चास्य कर्माणि" (मु० उ० 2/2/8)
"तस्य तावदेव चिरम्" (छा० उ० 6/14/2)।
"सर्वे पाप्मान प्रदूयन्ते" (छा० उ० 5/24/3)।
"त विदित्वा न लिप्यते कर्मणा पापकेन" (बृ० उ० 4/4/23)।
. . . इत्यादिस्मृतिभ्यश्च।
शकर भाष्य बृ० उ० 1/4/10
पेज (279-280)

हुआ अनासक्ति भाव से यत्किंचित कर्म करता रहता है एव ऐसा कर्म करता हुआ शरीर पात होने पर ब्रह्ममय हो जाता है।[1]

इस प्रकार शकर के बन्धन एव मोक्ष पर संक्षेपत विचार करने के पश्चात् अब हम पाश्चात्य दार्शनिक स्पिनोजा के बन्धन (Bondage) एव मुक्ति (freedom) पर यथापेक्षित सक्षेपत· विचार करेगे।

स्पिनोजा के अनुसार द्रव्य या ईश्वर ही परम तत्व है। यह अनन्त, शाश्वत् एव अपरिच्छिन्न है। इस द्रव्य या ईश्वर के अतिरिक्त इससे ही निःसरित अनेक पर्यायो से युक्त चिदचिद्रूप जगत् सान्त, अनित्य एवं परिच्छिन्न है। इन दोनो का यथोक्त अज्ञानतावश अनुभव न होना ही बन्धन है। अर्थात् नित्य द्रव्य और अनित्य प्रकृति का अज्ञानतावश मिलन अथवा प्रकृति से अतिरिक्त अपने को कुछ न समझना अथवा अज्ञानतावश अपने को पूर्णतया प्रकृति के अश के रूप मे सोचना ही बन्धन है।[2]

---

[1] ब्रह्मवेद बह्मैव भवति।
मुण्डक उपनि० 3/2/9

[2] There are two elements in the constitution of man, the substantial and the modal or the eternal and the temporal, and bondage is the meeting of the two.
Spinoza in the light of the Vedanta, Bondage and freedom Page 269,
- R. K. Tripathi

यह बन्धन द्रव्य एव ईश्वर के वास्तविक, विशुद्ध, नित्य एव अनन्त रूप को जानने से समाप्त होता है एव अनित्य परतन्त्र तथा सीमित प्रकृति, ईश्वर से नि·सरित हो उसी का रूप है तथा इस सान्त एव अनेक वासनाओ के कारण रूप प्रकृति से अपने को अलग समझना ही स्पिनोजा का मोक्ष या मुक्ति (freedom) है।[1] वासनाओ के कारण का पर्याप्त ज्ञान हमे ईश्वर से अपने वास्तविक सम्बन्धो के ज्ञान पर ही होता है क्योकि हम किसी चीज को वस्तुत तभी जानते है जब हम उसको ईश्वर से नि सरित रूप मे ही जानते है[2] और ऐसा जानना ही स्पिनोजा के अनुसार मोक्ष है। इस प्रकार शकर और स्पिनोजा के बन्धन और मोक्ष पर उपुर्यक्त प्रकारेण दृष्टिपात करने से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि इन दोनो दार्शनिको द्वारा इनके सम्बन्ध मे की गयी विवेचना यत्किचित भिन्नता के बावजूद बहुत कुछ माने मे समान है।

---

[1] This is why his bondage comes to mean really his ignorance; there can be no real bondage; in fact there is no bandage at all
Spinoza in the light of the Vedanta
Bondage and freedom P 270
- R. K. Tripathi

[2] Adequate knowledge of the causes of passions is nothing but the knowledge of the ourself in reference to God, because we know truly only when we know things in reference to God.
Spinoza in the light of the Vedanta
Bondage and freedom, page 270
- R K. Tripathi

इसके बाद सक्षेपत यथापेक्षित शकर एव स्पिनोजा के ज्ञान मीमासा पर भी विचार करेगे। यद्यपि इन दोनो की ज्ञानमीमासा विषयक विचारधारा पर सम्बन्धित अध्याय मे विचार किया जा चुका है फिर भी प्रसगत यहॉ भी सक्षेपत: विचार किया जाना अपेक्षित है।

शंकर की ज्ञानमीमासा पर दृष्टिपात करने से विदित होता है उन्होने ज्ञान के तीन स्तर माने है।

1 पारमार्थिक ज्ञान

2 व्यावहारिक ज्ञान

3 प्रातिभासिकज्ञान

स्पिनोजा ने भी ज्ञान के तीन स्तर माने है

1 काल्पनिक ज्ञान (Imaginatio)

2 बौद्धिक ज्ञान (Intellectus)

3. प्रातिभज्ञान अथवा प्रज्ञात्मक ज्ञान (Intuition)

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि शंकर और स्पिनोजा की ज्ञानमीमांसा सम्बन्धी विचारधारा भी बहुत कुछ माने मे समान है। इस प्रकार स्पष्ट है कि शकर एव स्पिनोजा के परम सत्, जगत्, एव बन्धन तथा मोक्ष आदि सम्बन्धी

विचारों मे बहुत कुछ माने मे एकरूपता है। यत्किचित् विभिन्नता का कारण बहुत कुछ माने मे उनका पौरस्त्य एव पाश्चात्य सस्कृति से सम्बन्धित होना ही कहा जाना अयथावत् न होगा।

इन दोनो की उपर्युक्त दार्शनिक विचारधाराओ पर विहगम दृष्टिपात करने से स्पष्ट है कि इनकी अद्वैतवादी दार्शनिक विचारधारा के द्वारा मानव का परम कल्याण एव परम श्रेयस ढूढने का सफल प्रयास किया गया है। शकर ने नाना प्रकार के क्लेशो से युक्त अनेक वासनाओ से पीड़ित मानव को इस जगत् से परे परम ब्रह्म की अनुभूति कराकर बहुत कुछ माने में अरविन्द का अतिमानव जैसा बनने का शुभ सदेश दिया है। इसी प्रकार पाश्चात्य दार्शनिक स्पिनोजा भी नाना पर्यायो से युक्त चिदचिद्रूप जगत् मे अनेक वासनाओ के वशीभूत होकर आपसी रागद्वेष एव घृणा आदि से सतृप्त मानव को आत्म–प्रेम, ईश्वर–प्रेम की ओर उन्मुख कर विश्व–बन्धुत्व का महान पाठ पढाया। स्पिनोजा का सर्वत्र ईश्वर को देखना, सब मे ईश्वर को देखना, ईश्वर मे सबको देखना, सद्गुणी जीवन व्यतीत करना, तर्क सगत जीवन ही परम श्रेयस की प्राप्ति का साधन बताना और इन सब के द्वारा मानव को एक

सदाचार युक्त नैतिक जीवन व्यतीत करने के लिए प्रेरित करना आदि बाते मानव कल्याण के लिये सदा प्रेरणा की स्रोत रहेगी।

भौतिकवादी युग मे आज का मानव अपने निजी स्वार्थ में व्यस्त है। अपने तनिक भर के स्वार्थ के लिए परिवार ग्राम, एव समाज की बात कौन कहे, पूरे राष्ट्र के हित को भी तिलाजलि देने मे प्रायः सोचने की स्थिति में नही है। अपने निजी स्वार्थ मे क्रूर से क्रूर एव निन्दनीय कृत्यो को करने में मानव विवेकशून्य सा होकर आचरण करता देखा जा रहा है। आचरण एवं चरित्र की मान्यताये लडखडा सी रही है। सारे सामाजिक एव मानवीय मूल्य पतन की ओर उन्मुख सा दीख रहे है। यह मेरा एव यह पराया जैसी तुच्छ विचार धारायें ही मानव के कर्तव्य और अकर्तव्य का प्राय निर्णायक बन गयी है। मानव को अवनति के गर्त मे गिराने वाली इस भौतिकीय विकराल विभीषिका से मुक्ति दिलाना ही आज की युग–पुकार है। मानव, मानव से प्रेम करे, जीव, जीव पर दया करे, परहित और परम शुभ ही मानव अपने जीवन का लक्ष्य समझे–एतदर्थ आज का मनीषी, विद्वान और प्रबुद्ध चिन्तित है। मानव के हितकारी एव परम कल्याणमय जीवन तथा विश्वबन्धुत्व एव जनहिताय व बहुहिताय जैसे महान शाश्वत् मूल्यो को प्राप्त करने तथा उनके अनुसार जीवन व्यतीत करने हेतु

मानव को शुद्ध हृदय से कटिबद्ध होकर सद्गुणी का जीवन व्यतीत करने के लिये शकर और स्पिनोजा की उक्त विचारधाराये बडी ही सहयोगी एवं सजीवनी तुल्य है। अस्तु शकर और स्पिनोजा के महान विचारो को इस अपने शोध प्रबन्ध मे पल्लवित एव परिवेष्ठित कर समाज के सम्मुख प्रस्तुत करने का एक अहर्निश प्रयास किया गया है। अगर यह प्रयास आज के भौतिकवादी युग के मानव को विश्व–बन्धुत्व की ओर उन्मुख कर जनहिताय एव बहुहिताय हेतु प्रेरित कर सत्यं शिव सुन्दर के प्राप्यर्थ उद्बेलित कर सका तो शोध–कर्ता अपने प्रयास को सार्थक समझेगा।

चयनित सहायक ग्रन्थों की सूची –

अरविन्द – वेद–उपनिषद्–गीता–भाष्य

आर०जी० भट्ट, चौखम्भा बनारस – साख्य प्रवचन

ईश्वर कृष्ण – साख्य कारिका

(डॉ०) गजेन्द्र नारायण मिश्र – शकर का मायावाद एव श्री अरविन्द द्वारा उसका खण्डन (एक समीक्षात्मक अध्ययन)

गगा प्रसाद उपाध्याय – अद्वैतवाद

चन्द्रधर शर्मा – पाश्चात्य दर्शन

चन्द्रधर शर्मा – भारतीय दर्शन आलोचन और अनुशीलन

चौखम्भा सीरीज – न्याय भाष्य

(डॉ०) छोटेलाल त्रिपाठी – दार्शनिक चिन्तन

(डॉ०) देवराज – बगाल हिन्दी मण्डल – पूर्वी तथा पश्चिमी दर्शन

दयाकृष्ण (सपादक) – पाश्चात्य दर्शन का इतिहास

दत्ता और चटर्जी – भारतीय दर्शन

न्याय सूत्र वात्स्यायन भाष्य

पातजलि – योग सूत्र

(डा०) पारस नाथ द्विवदी – भारतीय दर्शन

(आचार्य)बलदेव उपाध्याय – वैदिक साहित्य और सस्कृत

बलदेव उपाध्याय – भारतीय दर्शन

बाल गगाधर तिलक – गीता रहस्य अथवा कर्मयोग शास्त्र

बी० एन० सिह – पाश्चात्य दर्शन

भरत सिह उपाध्याय – बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन–द्वितीय भाग (बगाल हिन्दी मण्डल)

रमाकान्त त्रिपाठी – ब्रह्म सूत्र शकर भाष्य (चतु सूत्री) व्याख्या तथा अनुवाद

रामानुजाचार्य – श्री भाष्य (ब्रह्मसूत्र भाष्य)

(डॉ०) रामकृष्ण आचार्य – ब्रह्म सूत्रो के वैष्णव भाष्यो का तुलनात्मक अध्ययन

(डॉ०) राममूर्ति शर्मा – शकराचार्य उनके मायावाद तथा अन्य सिद्धान्तो का आलोचनात्मक अध्ययन

(प्रो०) राजेन्द्र स्वरूप भटनागर – दार्शनिक समस्याएँ – तत्वमीमासा (पाश्चात्य–सन्दर्भ)

विश्वेश्वरानन्द, वैदिक शोध सस्थान प्रकाशन – ऋग्वेद

(डॉ०) विश्वम्भर दयाल अवस्थी– वैदिक साहित्य सस्कृति और दर्शन

(डॉ०) विश्वम्भर दयाल अवस्थी– प्रस्थानत्रयी दर्शन

वैशेषिक सूत्रम्

सदानन्द – वेदान्तसार

श्री सतीश चन्द्र चट्टोपाध्याय एव धीरेन्द्र मोहन दत्त – भारतीय दर्शन

सर्वपल्ली राधाकृष्णन् – भारतीय दर्शन I - II

सस्ता साहित्य मण्डल नई दिल्ली – धर्मनीति

(प्रो०) सभाजीत मिश्र – काण्ट का दर्शन

(प्रो०) सगम लाल पाण्डेय– आधुनिक दर्शन की भूमिका

शकराचार्य – ब्रह्म सूत्र भाष्य

शकराचार्य – श्रीमद्भगवद्गीता भाष्य

शकराचार्य – ईशावास्य उपनिषद् भाष्य

शकराचार्य – छान्दोग्य उपनिषद् भाष्य

शकराचार्य – बृहदारण्यक उपनिषद् भाष्य

शंकराचार्य – केन उपनिषद् भाष्य

शकराचार्य – कठ उपनिषद् भाष्य

शंकराचार्य – प्रश्न उपनिषद् भाष्य

शंकराचार्य – मुण्डक उपनिषद् भाष्य

शकराचार्य – माण्डूक्य उपनिषद् भाष्य

शकराचार्य – तैत्तिरीय उपनिषद् भाष्य

शंकराचार्य – ऐतरेय उपनिषद् भाष्य

शकराचार्य – श्वेताश्वतर उपनिषद् भाष्य

शकराचार्य – जैमिनीय सूत्र भाष्य

शकर विरचित प्रकरण ग्रन्थ – सौन्दर्य लहरी

शकर विरचित प्रकरण ग्रन्थ – आनन्द लहरी

शकर विरचित प्रकरण ग्रन्थ – जीवन मुक्तानन्द लहरी

शकर विरचित प्रकरण ग्रन्थ – स्वात्म प्रकाशिक

शकर विरचित प्रकरण ग्रन्थ – आत्मानन्द विवेक

शकर विरचित प्रकरण ग्रन्थ – प्रश्नोत्तर रत्नमाला

शकर विरचित प्रकरण ग्रन्थ – भज गोविन्दम्

शकर विरचित प्रकरण ग्रन्थ – विवेक गोविन्दम्

शकर विरचित प्रकरण ग्रन्थ – सर्व सिद्धान्तसार सग्रह

शकर विरचित प्रकरण ग्रन्थ – सर्ववेदान्त सिद्धान्त सार सग्रह

(डॉ०) हरिशकर उपाध्याय – पाश्चात्य दर्शन का उद्दभव और विकास

हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा – भारतीय दर्शन की रूप रेखा

Aurolındo , The Lıfe Devıne

Aurovındo , Yogı Sadhana

Aurovındo , The Synthesıs Of Yoga

Aurovindo , On The Veda

Aurovindo ; Eight Upnıshjads

Aurovindo ; Essay On Gita

Bradley , Appearance And Reality

Bhattacharya, K C ; Place Of Indefinıte In Logıc

Bogomolo, V A S. Hıstory Of Ancıent Phılosophy

Chatterjee, S.C. & Dutta, D.M ; An Introductıon To Indıan Philosophy

Caird Edward ; The Crıtıcal Phılosophy Of Kant Vol. I & Ii

Deussen, The Philosophy Of Upnishads

Das, S K , A Study Of The Vedanta

Das, R , The Essentials Of Advaitism

Datta, D M , Contemporary Philosophy

Das Gupta, S N , A History Of Indian Philosophy

Deussan, Faul , System Of Vedant

Evolution 5thed 1950

Foundation Of Indian Culture - New York Sri Aurobindo Library 1955

Datta, D M , The Chief Currents Of Contemporary Philosophy

Ghate,V S , The Vedanta (A Comparative Study)

Hiriyanna, M , The Quest After Perfection

Hiriyanna, M , Outline Of Indian Philosophy

Hiriyanna, M , The Essentials Of Indian Philosophy

Hiriyanna, M , The Indian Philosophical Studies

Ideal And Progress - 4thed 1951

Jha, G N , Shankara Vedanta - University Of Allahabad 1939

Krishna Chandra , Studies In Vedantism, Calcutta

Kokileshwar Shshtri , The Introduction To Advaita Philosophy

Mukerji, A C., The Nature Of Self

Malkani, G R. , Metaphysics Of Advait Vedant

Macdonell, A A., A History Of Sanskrit Literature

Mahadevan, T , The Philosophy Of Advaita

Pureni, A B , The Integral Philosophy Of Arvindo

Passmore, John , Gerold Duckwooth And Co Ltd London , A Hundred Year Of Philosophy

Radhakrisnan, S ; Eastern Religions And Western Thought

Radhakrisnan, S , Indian Philosophy Vol I & Ii

Radhakrisnan, S And Muirheed , Contemporary Indian Philosophy

Roy, S S., The Heritage Of Shankara

Ranade, R.D , Vedanta The Culmination Of Indian Thought

Singh, R R ; The Vedanta Of Shankara - A Metaphysics Of Value Vol I

Shashtri Dakshinaranjan (Book Company Calcutta) - A Short History Indian Materialism

Sarkar, M.N., The System Of Vedanta Thought And Culture (Calcutta)

Singh , R.L.; An Enquiry Concerning Reason In Kant And Shankaracharya

Spinoza ; Ethica

Thebaut, G. , The Vedanta Sutra (Wıth The Commentarıes Of Shankara) Englısh Translatıon)

Trıpathı R K , Spınoza In The Lıght Of The Vedant

Thılly, F , Central Book Depot Allahabd, A Hıstory Of Indıan Phılosophy

The Ideal Of Karama Yogın - 7thed 1950

The Phılosophıcal Quarterly - Vol Xx - No - 1 Aprıl 1944

Urquhart, W S , The Veadant And Modern Thought

Wolfson H A , The Phılosophy Of Spınoza

Wıll Durant, P 6 , Story Of Phılosophy